अंक–2 वर्ष 2013

वार्षिक हिन्दी पत्रिका

# प्रज्ञा

भाकृअनुप
ICAR

गोवा के लिए भा.कृ.अनु.प. का अनुसंधान परिसर

एला, ओल्ड गोवा–403 402, गोवा (भारत)

प्रज्ञा 2013

vad -2

o"kZ - 2013

okf"kZd fgUnh if=dk

# izKk

xksok ds fy, Hkk-Ñ-vuq-i- dk vuqla/kku ifjlj

,yk] vksYM xksok] xksok - 403 402

संरक्षक
Mk- ujUæ irki flg
निदेशक

मुख्य सम्पादक
Mk- eryk tfy;V xIrk
वैज्ञानिक (कृषि संरचना एवं पर्यावरण प्रबंधन)

सह–सम्पादक
Jh 'kf'k fo'odek
कार्यक्रम सहायक (प्रयोगशाला तकनीकी)
कृषि विज्ञान केन्द्र, उत्तर गोवा

तकनीकी एवं प्रशासनिक समर्थन
Mk- xkiky jkenkl egktu
वैज्ञानिक (मृदा विज्ञान)
Jh lkjHk efu
सचिव, राजभाषा
वित्त एवं लेखाधिकारी

हिन्दी टंकण एवं आवरण
Jh foØkUr xIrk
अ.श्रे.लि.

idk'ku ,oa lEidl l=
fun'kd
xkok dh fy, Hkk-Ñ-vu-i- dk vu lèkku ifjlj
,yk] vkYM xkok
फोन : 0832–2284678, 79
फैक्स : 0832–2285649
ई–मेल : director@icargoa.res.in

मै. वीनस प्रिंटर्स एण्ड पब्लिशर्स, बी 62/8, नारायणा इन्डस्ट्रियल एरिया, नई दिल्ली – 110 028
फोनः 011–45576780, मोबाईलः 09810089097 द्वारा मुद्रित

# निदेशक की कलम से...

गोवा में खेती को तृतीय स्थान प्राप्त है। लेकिन पिछले वर्ष में खनन उद्योग बंद होने के कारण गोवा के लोगों में फिर से खेती की तरफ रुचि उत्पन्न हुई है। विदेशी पर्यटन एवं देशी पर्यटकों का प्रमुख केन्द्र होने के कारण गोवा में खेती और उससे संबंधित अन्य व्यवसाय रोजगार के प्रमुख स्त्रोत हो सकते हैं।

खेती और एकीकृत कृषि प्रणालियों को प्रमुखता देते हुए गोवा के लिए भा.कृ.अनु.प. के वैज्ञानिकों ने कई तकनीकियों का विकास किया है। इन्हीं तकनीकियों को प्राथमिक स्थान देते हुए उन्हें गोवा के और देश के सभी कोनों में पहुँचाने के लिए प्रज्ञा के इस द्वितीय अंक में इन पर कई लेख प्रस्तुत हैं। इस अंक में अन्य संस्थाओं से भी लेख शामिल किये गये है। साथ ही कई रोचक सामान्य लेख भी पहली बार इस अंक में सम्मिलित हैं।

मैं प्रज्ञा के द्वितीय अंक के सफल प्रकाशन हेतु सम्पादक मण्डल एवं लेखकों को बधाई एवं धन्यवाद देता हूँ।

शुभकामनाओं सहित

ujUn irki flg
(निदेशक)

# सम्पादकीय

गोवा के लिए भा.कृ.अ.प. का अनुसंधान परिसर द्वारा प्रकाशित वार्षिक पत्रिका ''प्रज्ञा'' का द्वितीय अंक आपके समक्ष प्रस्तुत करने में मुझे अपार गर्व और हर्ष हो रहा है।

तमिलनाडु के एक छोटे से गांव, सीननतिड़ल (जो रामेश्वरम के पास स्थित है), में जन्म लेकर आज मैं गोवा के लिए भारतीय कृषि अनुसंधान परिषद के अनुसंधान परिसर की वार्षिक हिन्दी पत्रिका ''प्रज्ञा'' की संपादकीय लिख रही हूँ, इसका श्रेय मैं अपनी स्वर्गीय माताजी श्रीमती भुवनेश्वरी संतानम को देती हूँ, जिन्होंने भाषाओं के प्रति और खासकर हिन्दी के प्रति मेरे मन में प्रेम की भावना उत्पन्न किया है। उनके डाले नींव पर आज तमिलनाडु की एक वैज्ञानिक को राजभाषा हिन्दी का इतना ज्ञान और प्रवीणता है। इसके अतिरिक्त मैं अपने विद्यालय के अध्यापक एवं अध्यापिकाएं श्रीमती शान्ता, श्री मौर्या एवं श्रीमती शेशद्री को भी हिन्दी भाषा का ज्ञान दृष्टि खोलने का श्रेय देती हूँ।

प्रथम अंक के लिए प्राप्त उत्साहवर्धक प्रतिक्रियाओं से सशक्त होकर इस अंक में हमने गोवा प्रदेश की खेती, बागवानी, पशुपालन आदि क्षेत्र के लिए कई उपयोगी लेख संकलित किए हैं। इसके अतिरिक्त हमने इस अंक में सामाजिक, साहित्यिक एवं राजभाषा सम्बन्धित लेख एवं कविताओं को भी सम्मिलित किया है और हमारे संस्थान के राजभाषा गतिविधियों की झलकियाँ प्रस्तुत किया है। मुझे आशा है कि ये लेख, कविता एवं अन्य रचनाएं आपके लिए फायदेमंद सिद्ध होंगी। इस अंक के प्रति आपकी प्रतिक्रियाओं का भी मुझे बेसब्री से इंतजार है, ताकि आगामी अंक को अधिक रोचक और आकर्षक बना सकूँ।

इस पत्रिका के लिए लेख, कविता और साहित्यिक रचनाओं के योगदान के लिए मैं इस संस्थान और अन्य संस्थानों के वैज्ञानिकों और अन्य कर्मचारियों को आभार व्यक्त करना चाहूँगी और आशा करती हूँ कि आगामी अंकों में भी इनका यही उत्साह के साथ योगदान मिलेगा। इस अंक के प्रकाशन के लिए हमें प्रोत्साहन एवं समर्थन देने के लिए हमारे निदेशक डॉ. नरेन्द्र प्रताप सिंह, श्री सौरभ मुनि, सचिव, हिन्दी कार्यान्वयन समिति एवं डॉ. गोपाल रामदास महाजन, वैज्ञानिक, मृदा विज्ञान को आभार व्यक्त करना चाहती हूँ। मेरे सम्पादक मंडल के श्री शशि विश्वकर्मा एवं श्री विक्रान्त गुप्ता के अनंत प्रयासों और योगदान को भी मैं सराहना चाहती हूँ।

Mk- eryk tfy;V xIrk
¼e[; lEiknd½

# विवरणिका


| Øe | y[k ,o y[kd | i"B l- |
|---|---|---|
| | rduhdh [k.M | 1 |
| 1- | èkku ¼vkjkbtk lVkbok ,y-½ e Ikk"kd rRok dh deh ,o blds ikcèku<br>– डॉ. गोपाल महाजन रामदास | 3 |
| 2- | fVdkÅ [krh d fy, e[; ik"kd rRok dh vifjgk;rk<br>– श्री शशि विश्वकर्मा, श्री दीप कुमार, श्री संजीव कुमार सिंह एवं डॉ. नरेन्द्र प्रताप सिंह | 10 |
| 3- | xkok e ukfj;y rFkk lqikjh mRiknk d fofofèkdj.k e ;=hdj.k dh lEHkkouk,<br>& डॉ. वी. अरूणाचलम | 18 |
| 4- | xkok e gYnh dh [krh grq lL; i.kkyh<br>– डॉ. अडवी राव देसाई, डॉ. एस. प्रिया देवी एवं डॉ. नरेन्द्र प्रताप सिंह | 20 |
| 5- | vnjd dk 0;olkf;d mRiknu grq lL; i.kkyh<br>– डॉ. अडवी राव देसाई एवं डॉ. नरेन्द्र प्रताप सिंह | 24 |
| 6- | Xkkok e ikÑfrd lokfrr ikfygkml d vUrxr tcjk dh [krh & ,d ykHkdkjh 0;olk;<br>– डॉ. एम. थंगम, डॉ. मतला जूलियट गुप्ता, डॉ. एस. प्रिया देवी एवं डॉ. सफीना एस.ए. | 30 |
| 7- | dkde ¼xkjflfu;k bfUMdk½ ¼pkbl½ ¼Fkkvjl½ dh fLFkfr] {kerk ,o lEHkkouk,<br>– डॉ एस. प्रिया देवी, डॉ. एम. थंगम एवं डॉ. सफीना एस.ए. | 34 |
| 8- | Ñf"k e'khuhdj.k }kjk xkok dh i{k= Qlyk e lL;kÙkj {kfr;k dk èkVko<br>– डॉ. मतला जूलियट गुप्ता, श्रीमति सुमति पांडुरंग चव्हान एवं श्रीमति पूनम बान्देकर | 40 |
| 9- | dktq d ckxkuk e xnk i"i dh vrj&Qly & ,d ykHknk;d m\|e<br>डॉ. सफीना एस.ए., डॉ. एस. प्रिया देवी एवं डॉ. एम. थंगम | 48 |
| 10- | dktq e ruk vkj tM cèkd dhVk dk lefdr uk'khtho icèku<br>– डॉ. मरुथादुरई | 51 |

11- tlV J.khdj.k dh dEI;wVjhÑr i.kkyh 54
– श्री सुजय दास एवं श्री के.एल. अहिरवार

12- [kjxk'k mRiknu % i;kbj.k iccèk 59
– डॉ. एस.के. दास एवं डॉ. एम. करूणाकरण

13- xkok e 'kdj ikyu 62
– डॉ. एकनाथ बी. चाकुरकर एवं डॉ. एम. करूणाकरण

14- nèkk : tkuojk dk jkx ,o jkdFkke &Hkkx 2 64
– डॉ. एस.बी. बारबुद्धे

15- rVorh tyok;q e tkikuh Doy ¼cVj½ ikyu 71
– डॉ. बी.के. स्वाई

16- gkbMªksikfuDl ¼ty loèku½ ik|kfxdh }kjk gj pkjk dk mRiknu 81
– डॉ. प्रफुल्ल कुमार नाईक एवं डॉ. रघुनाथ बी. धूरी

17- 'kdjk e Ñf=e xHkkèkku 86
– डॉ. एम. करुणाकरण, श्री. यू. रत्नाकरन, डॉ. पी.के. नायक एवं डॉ. नरेन्द्र प्रताप सिंह

18- Lokbu ¶yw dk rF; 91
– डॉ. जेड.बी. दूबल, डॉ. एस.बी. बरबुद्धे, एवं डॉ. नरेन्द्र प्रताप सिंह

19- in"k.k d dkjd vkj mud okuLifrd fuokj.k 93
& डॉ. राजनारायण एवं डॉ. नरेन्द्र प्रताप सिंह

jktHkk"kk [k.M 99

21- fgUnh lIrkg dk;Øe 101

22- ejs eu e Hkkjr dh Nfo 106
– डॉ. मतला जूलियट गुप्ता

23- ejs eu e Hkkjr dh Nfo 107
– श्रीमति सपना गायतोंडे

24- Ñf"k % n'k dh mUufr ;k fdlku dk vfHk'kki 108
– श्रीमति पूनम अरविन्द बांदेकर

25- fp=dyk 109

lkekU; lkfgR; [k.M 115

26- pUnHk"k.k f=onh ^jebl dkdk* 117
– श्री शशि विश्वकर्मा, श्री दीप कुमार, श्री संजीव कुमार सिंह एवं डॉ. नरेन्द्र प्रताप सिंह

27- ekj 122
– श्रीमति प्रतिभा उ. सावंत

28- nqnl'kk ns'k eas fgUnh dh % ikl fxdrk fgUnh&fnol dh 123
– श्री विक्रान्त गुप्ता

29- Ckj[kk dh cgkj 125
– डॉ राकेश शर्मा

30- iqN ij cBk HkkX; 126
– अज्ञात

31- dk'k ls vlhe vkdk'k 127
– डॉ मतला जूलियट गुप्ता

32- vfr Hkkfrdokn] gekjk i;kZoj.k vkSj oSf'od m".krk 128
– डॉ. राकेश शर्मा

33- 'kghn&,&tax ^vktknh dh vktknh^ dh 130
– डॉ मतला जूलियट गुप्ता

# तकनीकी खण्ड....

# धान (ओराइजा सटाइवॉ एल.) में पोषक तत्वों की कमी एवं इसका प्रबंधन

Mk- Xkkiky jkenkl egkt u[1]

## ifjp;

धान भारत की प्रमुख धान्य फसलों में से एक है। धान की खेती भारत की उत्तरी भागों के अधिकांश क्षेत्रों से लेकर दक्षिणी, पूर्वी एवं पश्चिमी भारत के सभी भागों में की जाती है। पश्चिमी तथा दक्षिणी क्षेत्रों में वर्ष में दो–तीन बार धान की खेती की जाती है और इसका देश के अधिकांश जनसंख्याओं की मूलभूत आवश्यकताओं की भरण–पोषण में प्रमुख योगदान है।

धान के अपने पोषण एवं विकास के लिए अनेक पोषक तत्वों की आवश्यकता होती है, जो प्रत्यक्ष अथवा परोक्ष रूप से पौधों में विशिष्ट कार्य करते हैं और उनकी कमी का पौधों पर प्रतिकूल प्रभाव पड़ता है। इसके फलस्वरूप उपज पर विपरीत प्रभाव पड़ता है।

मृदा परीक्षण एवं उसके आधार पर संतुलित उर्वरक के प्रयोग से इस कमी का नियंत्रण किया जा सकता है।

## u=tu

### deh dh y{k.k

fp= 1% u=tu dh deh dh y{k.k

- पुरानी पत्तियां पीली होने लगती हैं जो पहले 'v' आकार की हो जाती हैं
- पूरा पौधा में पीला–हरा रंग का हो जाता है
- गंभीर कमी के स्थिति में पत्तियां हल्की हरी और उनके सिरे हरिमाहीन हो जाते हैं
- अत्यधिक नत्रजन कमी के तनाव में पत्तियां मर जाती हैं

[1] oKkfud] enk foKku] गोवा के लिए भा.कृ.अनु.प. का अनुसंधान परिसर, एला, ओल्ड गोवा

- नत्रजन की कमी अक्सर विकास के दौरान, जैसे कल्ले कलियों के फूटने की अवस्था में जब नत्रजन की आवश्यकता अधिक होती है

## icèku

- संस्तुत नत्रजन उर्वरक जब 60 कि.ग्रा. नत्रजन प्रति हेक्टेयर से अधिक मात्रा में हो तो उसको 2–3 (खरीफ फसल) अथवा 3–4 (रबी फसल) हिस्से में विभाजित करके, प्रयोग करें। अधिक विभाजनों का प्रयोग करें, विशेष रूप से लम्बी अवधि में तैयार होने वाली फसल में और खरीफ मौसम में जब फसल की उपज क्षमता अधिक होती है।
- अधिकतम उपज प्राप्त करने के लिए पत्तियों में नत्रजन की मात्रा 1.4 ग्राम प्रति वर्ग मीटर पत्ती क्षेत्र से अधिक रखें, जो क्लोरोफिल मीटर रीडिंग (एस.पी.ए.डी.) 35 या पत्ती वर्ण चार्ट के रीडिंग 4 के बराबर होता है। जब एस.पी.ए.डी. एवं पत्ती वर्ण चार्ट में रीडिंग क्रमशः 35 और 4 से नीचे चला जाता है तो नत्रजन (ऊपर से छिड़काव) की टाप ड्रेसिंग दें।

### vtfod u=tu dk Lrkr

| mojdk dk uke | u=tu ifr'kr |
|---|---|
| यूरिया | 44.0 – 46.00 |
| अमोनियम सल्फेट | 19.9 – 21.00 |
| कैल्सियम अमोनियम नाइट्रेट | 25.0 |
| अमोनियम क्लोराइड | 26.0 |
| कैल्सियम नाइट्रेट | 13.0 – 15.0 |
| सोडियम नाइट्रेट | 16.0 |
| अमोनियम नाइट्रेट | 32.0 – 35.0 |

fp= 2¼v½% QkLQkjl dh deh ds y{k.k

fp= 2¼c½ QkLQkjl dh deh d; y{k.k

## QkLQkjl

### deh d; y{k.k

- कमी के लक्षण सबसे पहले पुरानी पत्तियों पर दिखाई देते हैं। वे लाल बैंगनी तथा नीली–हरी रंग की हो जाती हैं।
- अपरिपक्व पत्तियां गिर जाती हैं।
- फॉस्फोरस की कमी से चावल में शाखाएं/कल्ले घट जाती है।
- पत्तियों के डंडल पर परिगलित भाग बढ़ जाते हैं।

### i;cèku

- पौध प्रतिरोपण से पूर्व 60 कि.ग्रा. फॉस्फोरस पेंटाक्साइड को बेसल डोज में (रोपाई से पहले) दे दिया जाए।
- चावल में फॉस्फोरस की कमी का तत्कालिन प्रबंधन के लिए सिंगल सुपर फास्फेट जैसे पानी में घुलनशील उर्वरकों को लक्षणों के उग्रता के अनुरूप प्रयोग करने से लाभदायक सिद्ध होता है।
- कुछ वर्षों तक लगातार हरी खाद तैयार करना या गोबर की खाद 15–20 टन प्रति हेक्टेयर की दर से प्रयोग किया जाए तो फॉस्फोरस की कमी की पूर्ति हो सकती है। विशेष रूप से पहाड़ी इलाकों में जहां फॉस्फोरस की कमी अधिक पाई जाती है, देशी खाद्य के अतिरिक्त तीन वर्ष में एक बार 5 कुंतल प्रति हेक्टेयर की दर से रॉक फॉस्फेट का प्रयोग जैविक चावल के लिए लाभदायक सिद्ध होता है।

fp= 3¼v½ ikVf';e dh deh d; y{k.k

## ikVf';e

### deh d; y{k.k

- पोटैशियम की कमी के लक्षण सबसे पहले पुरानी पत्तियों में गहरी हरी रंग के साथ भूरी हाशिया के रूप में नजर आते हैं।

fp= 3¼c½ ikVf'k;e dh deh ds y{k.k

- कमी के लक्षण पत्तियों में उल्टे 'v' आकार में दिखाई देते हैं।
- पुरानी पत्तियों के सिरे पर गहरे परिगलित दाग दिखाई देते हैं।

## izcaèku

- पोटैशियम की कमी से बचने के लिए पौधरोपण या सीधी बुवाई से पहले 60 कि.ग्रा. पोटैशियम आक्साइड को मृदा में भली–भांति मिश्रित कर देना चाहिए। पोटैशियम की संस्तुत मात्रा से 25 प्रतिशत अधिक प्रयोग करें।
- पोटैशियम क्लोराइड, 1 प्रतिशत के घोल का पर्णीय छिड़काव किया जाए।

# lYQj

## deh ds y{k.k

fp= 4½ lYQj dh deh ds y{k.k

## deh d y{k.k

- सल्फर की कमी के लक्षणों का निदान अक्सर गलत ढंग से होता है क्योंकि इसके लक्षण नत्रजन की कमी की तरह ही होते हैं। इन दोनों में विशेष अंतर यही है कि नत्रजन की कमी के लक्षण सबसे पहले पुरानी पत्तियों पर दिखाई देते हैं जबकि सल्फर की कमी के लक्षण नई पत्तियों पर नजर आते हैं।
- इससे पूरा पौधा आगे चलकर पीला पड़ जाता है।
- बाद में पत्तों पर परिगलित धब्बे पड़ जाते हैं।

## izcaèku

- पौध रोपण या सीधी बुवाई के समय में सल्फरयुक्त उर्वरकों का प्रयोग 30 कि.ग्रा. सल्फर प्रति हेक्टेयर की दर से प्रयोग करें।
- 0.5 प्रतिशत सल्फर के घोल का पर्णीय छिड़काव करें।

## tLrk ¼ftad½

## deh d y{k.k

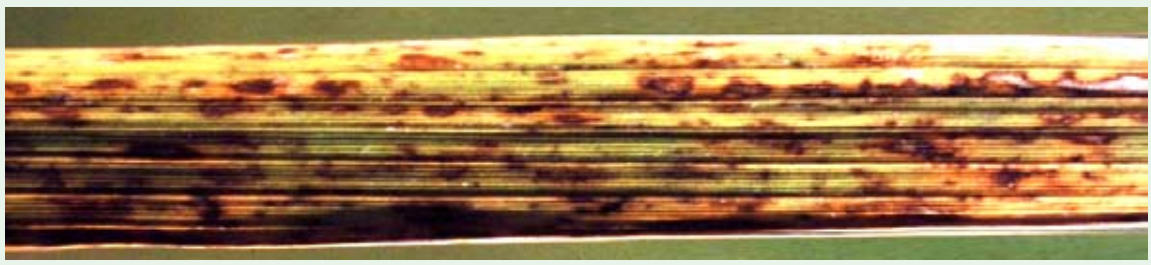



fp= 5% tLrk dh deh d y{k.k

- जिंक की कमी तटवर्तीय क्षेत्रों के अम्लीय मृदाओं में कम पाई जाती है, मगर लवणीय स्थितियों के अंतर्गत यह व्यापक होती है
- जिंक की कमी के लक्षण चावल में ''खैरा रोग'' के नाम से जाना जाता है, इसमें नीचे वाली पत्तियों पर भूरे धब्बे और धारिया दिखाई देते हैं
- नई पत्तियों के मिड़ रिब के निचले हिस्से में हरिमाहीनता
- हरे पौधों की उपरी पत्तियों पर धूल युक्त भूरे धब्बे दिखाई देते हैं

## icèku

- पौध रोपण के समय ज़िंक उर्वरक ज़िंक सल्फेट के रूप में प्रयोग 25 कि.ग्रा. प्रति हेक्टेयर की दर से करें
- जब इस कमी के लक्षण दिखाई देने लगते हैं तो 0.5 प्रतिशत ज़िंक सल्फेट का पर्णीय छिड़काव करें

## ykg

### ykg dh deh ds y{k.k

- तटवर्तीय क्षेत्रों में अम्लीय मृदाओं के अंतर्गत लौह की कमी बहुत कम दिखाई देती हैं किंतु लवणीय स्थितियों में यह पाई जाती है। यह सीधी बुआई वाले धान या एरोबिक धान में भी प्रचलित है।
- छोटी और नई–नई पत्तियों पर पीलापन आ जाता हैं और हरिद्रोग दिखाई देता है।
- सारी पत्तियां हरिमाहीन हो जाती हैं और उनमें पीलापन छा जाता है।
- यदि लौह की कमी अधिक मात्रा में होती है तो पूरा पौधा सूखने लगता है।

चित्र 5: लौह की कमी के लक्षण

## i:cèku

- क्यारियों में या छिड़काव करके फेरस सल्फेट (लगभग 30 कि.ग्रा. प्रति हेक्टेयर लौह) का प्रयोग करें।
- फेरस सल्फेट अथवा फेरस किलेट्स का 2–3 प्रतिशत घोल बनाकर पर्णीय छिड़काव करें।

## Ckkjkku

### deh d: y{k.k

fp= 7% ckjku dh deh d: y{k.k

- बोरॉन की कमी के लक्षण सबसे पहले छोटी पत्तियों पर दिखाई देते हैं।
- बोरॉन की कमी युक्त धान के पौधों में पैनिकल नहीं निकल पाती हैं क्योंकि बोरॉन की परागण उवं प्रजनन में विशेष भूमिका है। यदि यह कमी पैनिकल फूटने के समय होती है तो पैनिकल निकलती ही नहीं।
- छोटी और नई पत्तियों के नोक सफेद पड़कर मुड़ जाते हैं।
- शीर्षस्थ अंकों/नोक खत्म हो जाते हैं।

### mipkj

- मृदा में बोरेक्स 15 कि.ग्रा. प्रति हेक्टेयर का प्रयोग करें।
- 0.2 प्रतिशत बोरिक एसिड का पर्णीय छिड़काव करें।
- बोरेक्स के घोल का प्रयोग बोरॉन की कमी को दूर करने का सबसे अच्छा तरीका है। घोल के रूप में (0.5–3 कि.ग्रा. बोरेक्स प्रति हेक्टेयर) छिड़क कर या पौधरोपण से पहले मिट्टी में मिलाकर दिया जा सकता है। धान में जब पत्तियां विकसित होने के दौरान पर्णीय छिड़काव भी लाभदायक होता है।

# टिकाऊ खेती के लिए सूक्ष्म पोषक तत्वों की अपरिहार्यता

Jh 'kf'k fo'odekZ[1] Jh nhi dqekj[2] Jh lqtho dqekj flag[3] ,o Mk- ujsUnz izrki flag[4]

## ifjp;

विगत 20–25 वर्षों में विकसित एवं विकासशील देशों ने निःसंदेह उच्च उपज वाली किस्मों तथा सघन सस्य पद्यति अपनाने एवं प्राथमिक पोषक तत्वों के उर्वरकों के उपयोग से कृषि उत्पादन में वृद्धि हुई है। परन्तु देश में हरित क्रान्ति (1968–88) से लेकर आज तक प्राथमिक पोषक तत्वों नत्रजन, फास्फोरस एवं पोटाश का अधिक प्रयोग तथा वहीं सूक्ष्म तत्वों न के बराबर अथवा बिल्कुल ही नहीं किया गया। परिणाम स्वरूप फसलों का पोषक तत्वों, नत्रजन, फास्फोरस एवं पोटाश के प्रति प्रभाव घटा। फलस्वरूप उपज में अब या तो गिरावट आ रही है अथवा स्थिरता की स्थिति है।

भारत में पायी जाने वाली अधिकांश मृदाओं में न केवल प्राथमिक पोषक तत्वों की कमी है, अपितु आजकल उनमें सूक्ष्म तत्वों की कमी तेजी से बढ़ रही है। उच्च उपज वाली किस्मों से एवं सघन सस्य पद्यति अपनाने से, मृदा में सूक्ष्म तत्वों की कमी की बढ़ोत्तरी तेजी से हुई है। फलस्वरूप सूक्ष्म पोषक तत्वों में कमी उत्पादन एवं उत्पादकता के रास्ते में एक बाधक के रूप में सिद्ध हुई है।

अतः आवश्यकता इस बात की है कि मृदा में प्राप्त सूक्ष्म पोषक तत्वों की कमी को रोका जाए और मृदा की उत्पादन क्षमता बढ़ाया जाए। यह सर्वविदित है कि पौधे अपने वृद्धि एवं विकास के लिए पोषक तत्वों को ग्रहण करते हैं। इन पोषक तत्वों में से 6 पोषक तत्वों जिनकी पौधों को सूक्ष्म मात्रा में आवश्यकता होती है परन्तु पौधों की वृद्धि एवं विकास के लिए अपरिहार्य होती है। ये सूक्ष्म पोषक तत्व निम्नलिखित है– जस्ता (ज़िंक), बोरॉन, लोहा (आयरन), मैगनीज, मोलिब्डेनम तांबा (कॉपर) और क्लोरीन।

यद्यपि आजकल मृदाओं में सभी सूक्ष्म पोषक तत्वों की कमोवेश कमी हैं किन्तु जस्ता, बोरॉन, मोलिब्डेनम की कमी समान्य तौर पर पाई जाती है। हल्की कणाकर मृदा (बलुई मृदाएं), एवं अत्याधिक वर्षा वाले क्षेत्रों में सामान्यताः इन सूक्ष्म पोषक तत्वों की कमी सामान्य तौर पर पायी जाती है।

## lw{e iks"kd rRoksa dh deh ds y{k.k ,o mudk izca/ku

### tLrk ¼ftad½

भारत में पायी जाने वाली अधिकांश मृदाओं में ज़िंक की कमी पायी जाती है। इसकी कमी उन मृदाओं में ज्यादा पायी जाती है जिन मृदाओं का पी.एच. मान ज्यादा होता है अर्थात लवणीय एवं क्षरिया मृदाओं में जस्ता की कमी पाई जाती है।

वह मृदाए जो क्षारीय होती है एवं फास्फोरस की उपलब्धता सामान्य से ज्यादा होती है।

तराई क्षेत्रों (गंगा के मैदानी क्षेत्रों) में इसकी कमी बहुधा पायी जाती है। ज़िंक की मात्रा मृदा में 0.6 मि.ग्रा./कि.ग्रा. से कम होने पर यह ज़िंक की कमी मानी जाती है।

[1] dk;Øe lgk;d (प्रयोगशाला तकनीकी), कृषि विज्ञान केन्द्र, गोवा के लिए भा.कृ.अनु.प. का अनुसंधान परिसर, एला, ओल्ड गोवा
[2] i{k= izca/kd, कृषि विज्ञान केन्द्र, गोवा के लिए भा.कृ.अनु.प. का अनुसंधान परिसर, एला, ओल्ड गोवा
[3] rduhf'k;u, गोवा के लिए भा.कृ.अनु.प. का अनुसंधान परिसर, एला, ओल्ड गोवा
[4] funs'kd, गोवा के लिए भा.कृ.अनु.प. का अनुसंधान परिसर, एला, ओल्ड गोवा

fp= 1% /kku esa ftad dh deh ds y{k.k

## fof'k"V dk;Z

पौधों में एक समान परिपक्वता लाने में सहायक होता है।

## deh ds y{k.k

1. ज़िंक की कमी के लक्षण पुरानी एवं नई दोनों पत्तियों पर होता है।
2. ज़िंक की कमी होने पर सामान्यतः पौधो में सबसे पहले वृद्धि पर प्रभाव पड़ता है और तने की लम्बाई घट जाती है और पत्ती मुड़ जाती है।
3. धान में ज़िंक की कमी को खैरा रोग नाम से जाना जाता है।
4. कमी के लक्षण नीचे से तीसरी या चौथी पत्ती पत्ती पर चाकलेटी गहरे भूरे या लाल भूरे रंग के धब्बे बनना प्रारम्भ हो जाता है। प्रभावित पौधे खेत में टुकड़े में जगह–जगह देखे जा सकते है।
5. दहलनी फसलों में ज़िंक की कमी से पौधे की वृद्धि रूक जाती है। पत्तियाँ किनारों से पीली हो जाती है तथा पत्तियों छोटी और पौधे देर से परिपक्व होता है।
6. ज़िंक की कमी से तिलहनी फसलों की बढवार मंद हो जाती है। पत्त्यिों के किनारे गुलाबी हो जाती है, पत्तियों के नसों के बीच का रंग कागजी सफेद या पीला सफेद हो जाता है, जबकि नसे हरी बनी रहती है। पत्तियाँ ऊपर या नीचे की तरफ प्यालेनुमा आकृति ले लेती है।

## lzksr

| | | | | |
|---|---|---|---|---|
| ज़िंक किलेट्स | – | ज़िंक प्रतिशत | – | 12% |
| ज़िंक सल्फेट मोनोहाइड्रेट | – | ज़िंक प्रतिशत | – | 33% |
| ज़िंक सल्फेट हेप्टाहाइड्रेट | – | ज़िंक प्रतिशत | – | 21% |

## mojd dh ek=k ,o i;kx fofèk

ज़िंक की कमी को दूर करने के लिए ज़िंक सल्फेट का प्रयोग अधिक प्रचलित है। उर्वरक की मात्रा भूमि के प्रकार, सस्य सघनता एवं फसल उत्पादकता पर निर्भर करता है। सामान्य तौर पर 25–60 कि.ग्रा. ज़िंक सल्फेट प्रति हेक्टेयर की दर से प्रति दो वर्षों में एक बार मृदा में देना चाहिए अथवा 10 कि.ग्रा. ज़िंक सल्फेट प्रति हेक्टेयर प्रत्येक वर्ष देने की सिफारिश की जाती है।

सामान्यता ज़िंक सल्फेट उर्वरक का अनुप्रयोग बुआई के समय और द्रव्य रूप में पर्णीय छिड़काव विधि से भी किया जाता है।

पर्णीय छिड़काव में 0.5 प्रतिशत सान्द्रता के ज़िंक सल्फेट का घोल बुआई के 20–30 दिन बाद करना चाहिए। दूसरा छिड़काव 15 दिन के अन्तराल पर करना चाहिए। एक हेक्टेयर के लिए 0.5 प्रतिशत सान्द्रता का ज़िंक सल्फेट का घोल 500 ली. घोल पर्याप्त होता है।

## ckjku

बोरॉन की कमी भारत के अधिकांश मृदाओं में पायी जाती है। प्रायः बोरॉन का अभाव अम्लीय मृदाओं, उच्च निक्षालन वाली मृदाएं, लेटराइट मृदाऐं, हल्के कणाकार एवं कम जीवांश पदार्थ वाली मृदाओं में पायी जाती है। अत्याधिक वर्षा वाले क्षेत्रों में रिसाव के वजह से मृदाओं में बोरॉन का आभाव पाया जाता है।

बोरॉन की मात्रा 0.35 मि.ग्रा./कि.ग्रा. से कम होना इसकी कमी का द्योतक है।

## fof'k"V dk;Z

पौधों के पुष्पों में परागण एवं प्रजनन क्रियाओं में सहायक होता है।

## deh ds y{k.k

1. बोरॉन की कमी के लक्षण प्रायः नई निकलती हुई पत्तियों में पाये जाते है। इसकी कमी होने पर पत्तियाँ मोटी होकर मुड़ जाती है।
2. जड़े नहीं बढ़ती, मुख्य तनों का सिरा मर जाता है।
3. फूल तथा फल नहीं बनते है पत्त्यिों भंगूर हो जाती है।

fp= 2% ukfj;y esa ckjku dh deh ds y{k.k

## lkzr

| | | |
|---|---|---|
| बोरेक्स | – | 10.5% बोरॉन |
| बोरिक अम्ल | – | 17% बोरॉन |

## ek=k ,oa iz;ksx fofèk

मृदा में बोरॉन की कमी होने पर बोरेक्स उर्वरक का प्रयोग सामान्यतः किया जाता है। उर्वरक का मृदा में अनुप्रयोग दो तरह से किया जाता है– बुआई के समय छिटकावा विधि से और दूसरा पर्णीय छिटकाव के रूप में। छिटकावा विधि से बोरेक्स



fp= 3% uhcw dh ifRr;ksa esa rkEcs dh deh ds y{k.k

उर्वरक की मात्रा 10–20 कि.ग्रा./हेक्टेयर तथा पर्णीय छिटकाव के रूप में बोरॉन की कमी की पूर्ति के लिए 0.2 प्रतिशत बोरेक्स घोल का बुआई के 15 दिन बाद एवं पौधे के पुष्पीय अवस्था में किया जाता है।

## dkij ¼rkack½

सामान्यतया तांबे की कमी अम्लीय मृदाओं, जिनमें निक्षालन बहुत कम होता है तथा मोटे और बारीक गठन वाली ऐसी मृदाएं जिनमें चूना बहुत अधिक डाला गया है, ताँबा की कमी पायी जाती है। मृदा में अत्याधिक मोलिब्डेनम उर्वरक का प्रयोग भी कापर की उपलब्धता पर विपरीत प्रभाव डालता है। जल भराव एवं अल्प जीवांश पदार्थ वाली मृदाओं में भी इसकी कमी पायी जाती है।

मृदा में 0.2 मि.ग्रा/कि.ग्रा. से कम होने पर मृदा में इसकी कमी का द्योतक है।

## fof’k"V dk;l

कापर अत्प्रत्यक्ष रूप से क्लोरोफिल निर्माण में सहायक होता है तथा यह अन्य एन्जाइमों के क्रियाकलाप सहायक भी है।

## deh ds y{k.k

1. धान्य फसलों में कॉपर की कमी से रिक्लेमेशन नामक बीमारी हो जाती है। जिसमें नई पत्तियाँ शिथिल व हरिमाहीन हो जाती है और मुड़े हुई रहती है। पत्तियों के नोक सफेद पड़ जाते है।
2. सरसों वर्ग के पौधो की शिराओं व मध्य में धब्बे पड़ जाते है।
3. पत्तियाँ प्रायः कुरूप हो जाते है उनका रंग हल्का पड़ जाता है और फलो की छाल पर गोंद जैसा चिपचिपा पदार्थ जम जाता है।



fp= 4% lqikjh esa rkEcz dh deh ds y{k.k

## lksr

कापर सल्फेट – 24% कापर

कापर सल्फेट – 35% कापर

## ek=k ,oa iz;ksx fof/k

कापर की कमी को दूर करने के लिए कापर सल्फेट का प्रयोग किया जाता है। कापर की कमी वाले क्षेत्रों में कापर सल्फेट 1.5–2 कि.ग्रा. प्रति हेक्टेयर की दर से प्रयोग किया जाता है। पर्णीय छिडकाव के रूप में कापर सल्फेट का 0.025 प्रतिशत का घोल का प्रयोग कापर की कमी को दूर करने के लिए प्रयोग किया जाता है।

# eSxuht

मैगनीज की कमी विशेषकर चूनेदार क्षारीय मृदाओं में पायी जाती है। तथापि कुछ उदासीन बलुई मृदाओं हल्की दोमट मृदाओं में भी इसकी कमी पायी जाती है। अम्लीय मृदाओं में मैगनीज की कमी सामान्यतः नहीं पायी जाती है।

मृदाओं में मैगनीज का 15 मि.ग्रा./कि.ग्रा. से कम होना इसकी कमी का द्योतक है।

## fof’k"V dk;l

क्लोरोफिल (पत्तियों का हरा रंग) व शर्करा के निर्माण में सहायक होता है।

## deh ds y{k.k

1. मैगनीज के आभाव का प्रथम लक्षण पत्तियों की शिराओं में हरिमाहीन धब्बे उत्पन्न हो जाते है।
2. धान्य फसलों की पत्तियों भुरी हो जाती है और उनमें उत्तक गलन रोग पैदा हो जाता है।

3. इसकी कमी से जई की भूरी चित्ती, गन्ने का अंगमारी रोग, मटर का चित्ती रोग, तथा चुकंदर का चित्तीदार पीला रोग हो जाता है।

### lzksr

मैगनीज सल्फेट – 30.5% मैगनीज

मैगनीज इ.डी.टी.ई. – 5–12% मैगनीज

मैगनीज क्लोराइड – 17% मैगनीज

### ek=k ,oa iz;ksx fof/k

मैगनीज का प्रमुख उर्वरक मैगनीज सल्फेट है। उन उर्वरकों को मृदा में बुवाई के समय अथवा खड़ी फसल में पर्णीय छिडकाव के रूप में किया जाता है।

10–20 कि.ग्रा. में सल्फेट प्रति हेक्टेयर के प्रयोग से मैगनीज की कमी को दूर की सकती है। खरी फसल में मैगनीज की कमी के उपचार के लिए पर्णीय छिडकाव 0.5 प्रतिशत सान्द्रता का मैगनीज सल्फेट विलयन का प्रयोग करना चाहिए।

## ekfyCMsue

मोलिब्डेनम का आभाव सम्भवतः (अम्लीय मृदाओं); बुलई मृदाएं, उच्च तथा श्रेष्ठ विनियम क्षमता वाली मृदाओं पायी जाती है।

मृदाओं में 0.04–0.12 मि.ग्रा./कि.ग्रा. मोलिब्डेनम इसकी कमी को प्रदर्शित करता है।

### fof'k"V dk;Z

दलहनी फसलों में वायुमण्डलीय नत्रजन के स्थिरीकरण के आवश्यक होता है।

### deh ds y{k.k

1. मोलिब्डेनम की कमी के लक्षण लगभग नत्रजन की कमी के लक्षणों के समान होता है। पत्तियों के किनारे झुलस जाती है। तने व पत्तियाँ पीले व धब्बेदार हो जाती है।
2. दलहनी फसलों की जड़ों में ग्रंथियों की संख्या कम एवं आकार छोटा हो जाता है।
3. नींबू जाति के पौधों में इसकी कमी से पत्तियों पर पीला धब्बा पड़ जाता है जिसे एलो स्पाट नामक रोग कहते है। फूलगोभी में इसकी कमी से व्हिपटेल नामक बीमारी होती है।

### lzksr

अमोनियम मोलिब्डेनम – 52% मोलिब्डेनम

सोडियम मोलिब्डेनम – 39% मोलिब्डेनम

### ek=k ,oa iz;ksx fof/k

साधारणता मोलिब्डेनम की कमी को दूर करने के लिए सोडियम मोलिब्डेनम या अमोनिया मोलिब्डेनम का प्रयोग किया जाता है। बुआई के समय 2–4 कि.ग्रा. प्रति हेक्टेयर सोडियम मोलिब्डेनम या अमोनियम मोलिब्डेनम का प्रयोग किया जाता है।

पर्णीय छिडकाव के रूप में खड़ी फसल में 0.1–0.3 प्रतिशत सोडियम मोलिब्डेनम का घोल 150 ली. प्रति हेक्टेयर की दर से फसलों पर प्रयोग किया जाता है।

## vk;ju ¼ykgk½

लोहा की कमी सामान्यतः क्षारीय मृदाओं में पायी जाती है। अम्लीय मृदाओं में इसकी सुलभता अधिक होता है। मोटे कणाकार वाली मृदाओं (बलुई मृदाओं) में इसका आभाव होता है।

### fof’k"V dk;l

क्लोरोफिल निर्माण के लिए आवश्यक तत्व है। तथा पौधे में नाइट्रेट का अवकरण कराता है।

### deh d y{k.k

1. पौधे के अग्र भाग में क्लोरोसिस (पीलापन) हो जाती है तथा अधिक कमी होने पर पूरा पौधे सफेद हो जाता है।
2. दलहनी फसलों में पत्तियाँ पीली परन्तु शिराये हरी रहती है।
3. नींबू वर्गीय पौधे में पत्तियों के साथ–साथ टहनियाँ भी सूख जाती है।

### lkr

फेरस सल्फेट – 20% आयरन (लोहा)

### ek=k ,o i;kx fofèk

लोहा की कमी को दूर करने के लिए मृदा में 20–40 किग्रा/हेक्टेयर फेरस सल्फेट डालना चाहिए।

पर्णीय छिड़काव के लिए इस घोल का (0.4 प्रतिशत फेरस सल्फेट + 0.2 प्रतिशत चूना) 150 ली. प्रति हेक्टेयर की दर से खड़ी फसल पर छिड़काव किया जाना चाहिए।

l{e rRok dh deh d ifr lonu ikèk

| l{e rRo | lonu’khy ikèk |
|---|---|
| लोहा | नींबू, केला, फूलगोभी, धान, जौ ज्वार |
| बोरॉन | सेब, नाशपाती, गाजर, फूलगोभी |
| मोलिब्डेनम | दलहनी फसलें, सरसों वर्गीय फसलें |
| ताँबा | जौ, मक्का, टमाटर, प्याज, जई |
| जस्ता | मक्का, नींबू वर्गीय पौधे |
| मैगनीज | जई, मक्का, सोयाबीन, मूली, सेब, नींबू |

l{e rRok dh deh l gkus okyh ikèkk e chekfj;k

| | mRiUu jkx | rRo dh deh |
|---|---|---|
| Qyk e | नींबू में डाईबैक बीमारी | कापर |
| | आंवले में आन्तरिक उत्तक क्षय समय | बोरॉन |
| | नींबू में लिटिल लीफ बीमारी | कापर |
| | आम व बैंगन में लिटिल लीफ बीमारी | ज़िंक |
| | अंगूर में मीलेरेन्डेज | बोरॉन |
| | नींबू में एलो स्पाट बीमारी | मोलिब्डेनम |
| | अमरूद में ब्राऊनींग बीमारी | ज़िंक |
| | आम में आन्तरिक निक्रोसिस | बोरॉन |
| | कटहल का आतंरिक उत्तक क्षय | बोरॉन |
| lfCt;k e | फूलगोभी में व्हिपटेल बीमारी | मोलिब्डेनम |
| | फूलगोभी में ब्राउनिंग बीमारी | बोरॉन |
| | चुकन्दर में हर्टराट बीमारी | बोरॉन |
| | मटर में मार्श रोग बीमारी | मैगनीज |
| | चुकंदर में चित्तीदार पीला रोग | मैगनीज |
| vUu e | मक्का में सफेद कली रोग | ज़िंक |
| | धान में खेरा रोग | ज़िंक |
| | धान्य फसल में रिक्लेमेशन रोग | कापर |

## l{e rRok d i;kx d lEcfUèkr dN lkoèkkfu;k

1. ज़िंक, कॉपर एवं आयरन सूक्ष्म पोषक तत्वों के उर्वरकों को फॉस्फोरस उर्वरकों के साथ कदापि मिश्रण नहीं करना चाहिए।
2. आवश्यकता से अधिक फॉस्फोरस उर्वरकों का मृदा में प्रयोग नहीं करना चाहिए अथवा मृदा में उपस्थित सूक्ष्म पोषक तत्वों जैसे ज़िंक आदि का पौधों की प्राप्यता कम हो जाती है।
3. अत्यधिक लोहा (आयरन) वाले उर्वरकों के प्रयोग से अन्य सूक्ष्म पोषक तत्व जैसे–ज़िंक और मैगनीज की कमी हो जाती है।
4. सल्फर और कापर उर्वरक के अधिक प्रयोग से मोलिब्डेनम तत्व की कमी होती है। इसलिए सल्फर और कॉपर उर्वरक का प्रयोग संस्तुत मात्रा से ही करना चाहिए।
5. चूने का प्रयोग संस्तुत मात्रा से अधिक मात्रा का प्रयोग अम्लीय मृदाओं के सुधार के नहीं किया जाना चाहिए। अन्यथा मृदा में उपस्थित अन्य सूक्ष्म पोषक तत्वों जैसे ज़िंक आयरन मैगनीज और बोरॉन की कमी पौधो में होने लगती है।
6. सदैव दिये गये संस्तुत मात्रा में ही सूक्ष्म पोषक तत्वों का प्रयोग करना चाहिए। कभी भी अत्याधिक उर्वरकों का प्रयोग मृदा में नहीं करना चाहिए।
7. उर्वरक का प्रयोग सदैव सायंकाल के दौरान करना चाहिए।

# गोवा में नारियल तथा सुपारी उत्पादों के विविधिकरण में यंत्रीकरण की संभावनाएं

Mk- oh- v:.kkpye[1]

नारियल एक बहुप्रयोजनीय बारहमासी फसल है जिसे सामान्यतः कल्पवृक्ष कहा जाता है। गोवा राज्य के लिए यह वरदान है कि यहां की जलवायु नारियल की खेती के लिए अनुकूल है। गोवा में नारियल राज्य की दूसरी मुख्य बागवानी फसल है जिसे 25 हजार हैक्टेयर क्षेत्र में उगाया जाता है। इसी प्रकार गोवा में सुपारी का उत्पादन 1600 हैक्टेयर क्षेत्र में होता है। भारतीय कृषि अनुसंधान परिषद का गोवा स्थित अनुसंधान परिसर ने नारियल के उत्पादन में सुधार हेतु गहन अनुसंधान कार्य किया है। नारियल उत्पादन में लगे किसानों को निम्न उत्पादकता, उच्च उत्पादन लागत तथा उत्पादों की विविधता में कमी के कारण पर्याप्त लाभ नहीं मिल पा रहा है। नारियल फल से कई मूल्य संवर्धित उत्पाद जैसे– नारियल जटा (कॉयर), सक्रिय चारकोल, सूखा नारियल, खली एवं नाटा–डी–कोको तैयार किया जाता है। केवल परिपक्व नारियल ही आहार एवं तेल के लिए तथा हरा नारियल पीने के लिए उपयोग किए जाते हैं। छाल से नारियल जटा बनाया जाता है तो नारियल जटा गूदा के रूप में भारी मात्रा में तैयार होता है। अतः इन अपरद्द पदार्थों से उपयोगी उत्पादों के उत्पादन के द्वारा नारियल व सुपारी बगीचों से अतिरिक्त आय प्राप्त किया जा सकता है। इससे गोवा राज्य के भूमिहीन गरीब मजदूरों को रोजगार एवं जीविका के साधन उत्पन्न हो सकते हैं।

## ukfj;y [kky

1. शेल चारकोल नारियल खोल से प्राप्त एक महत्वपूर्ण उत्पाद है। शेल चारकोल को बड़े पैमाने पर घरेलू तथा औद्योगिक ईंधन के रूप में उपयोग किया जाता है। भारतीय परम्परागत पद्धति में 1000 पूर्ण खोल से 35 कि.ग्रा. चारकोल या 30000 पूर्ण खोल से एक टन चारकोल बनता है। अच्छी गुणवत्ता वाले चारकोल के लिए पूरी तरह सूखी, स्वच्छ एवं परिपक्व खोल का उपयोग किया जाना चाहिए। वर्तमान समय में चारकोल उत्पादन के लिए अनेक आधुनिक पद्धतियां उपलब्ध हैं। आधुनिक वेस्ट हीट रिकवरी युनिट में नारियल खोल को जलाकर जो गर्मी उत्पन्न होती है उसका उपयोग खोपरा सुखाने के लिए किया जाता है और शेल चारकोल बाईप्रोडेक्ट के रूप में प्राप्त होता है। यह पद्धति एक कुटिर उद्योग स्तर पर अपनाए जाने वाली सरल एवं सशक्त उत्पादन पद्धति है।

fp= 1% ukfj;y dh Nky ls cuk tVk

2. परिपक्व नारियल खोल से बना चूर्ण एक और उपोत्पाद है। बाजार में उपलब्ध बार्क पाउडर, फरफुरोल तथा मूंगफली के छिलके से बने चूर्ण की तुलना में नारियल खोल चूर्ण अपनी गुणवत्ता, रासायनिक गुण तथा जल सोखने की क्षमता व कवक प्रतिरोधी गुणों के कारण बेहतर माना जाता है।

---

[1] iz/kku oSKkfud ,oa vè;{k ¼cckxokuh½, गोवा के लिए भा.कृ.अनु.प. का अनुसंधान परिसर, एला, ओल्ड गोवा

## ukfj;y dh Nky

1. नारियल की छाल से बना जटा एक मुख्य उत्पाद है। कई स्थानों पर नारियल की छाल को जटा बनाने में उपयोग नहीं किया जाता है। नारियल की जटा से कई उत्पाद बनते हैं जिन्हें देशी एवं विदेशी बाजारों में बेचा जाता है।

2. नारियल की छाल से जटा निकालते समय कॉयर पिथ बनता है, उदाहरण के लिए एक कि.ग्रा. जटा से दो कि.ग्रा. कोयर पिथ निकलता है। कॉयर मज्जा पीट है जिसे कोको पीट भी कहा जाता हैं। यह बागवानी अधःस्तर के लिए उचित सामग्री है।

3. कॉयर पिथ से बने जियो–टेक्सटाइल, खान से निकली मिट्‌टी के निस्तारण तथा मृदा अपरदन रोकने में उपयोगी है।

4. मृदा रहित मीडिया जैसे पीट, वर्मीक्यूलाइट या परलाइट का विस्तृत उपयोग मैक्रो प्रोपोगेशन द्वारा उत्पादित पादपों को मजबूत बनाने के लिए किया जाता है। कोको–पीट अब व्यवसायिक नर्सरियों एवं पुष्प उत्पादन इकाईयों में भी वृद्धि माध्यमों का एक अवयव के रूप में इस्तेमाल किया जा रहा है, परन्तु इसका उपयोग सीमित है। मृदा–रहित मीडिया मे विकसित पौधों में ऐसी समस्याएं होती हैं जो प्राकृतिक मृदाओं में नहीं होती हैं। अधिकांश मृदा रहित मीडिया में पोषक तत्व सीमित या न के बराबर होते हैं। कोको–पीट उन्नत विकास मीडिया के तीसरी पीढ़ी के विकल्पों में से एक है।

5. गमलों में पले पौधों का पुष्प उत्पादन उद्योग के क्षेत्र में अत्यधिक महत्व है जो विस्तृत श्रेणी के प्रयोगों के लिए उपयुक्त हैं। शहरी क्षेत्र में गमलों में पले जाने वाले पौधों का उपहार के रूप में तथा अन्य कई रूप में मांग है चूंकि शहरी क्षेत्रों में भूमि के लिए बढ़ते दबाव तथा रिहायशी एवं कार्य स्थलों का आकाश की ओर विस्तार है। भविष्य में इस विकास मीडिया को अधिक महत्व दिया जाएगा क्योंकि इससे परम्परागत मृदा आधारित मिश्रण की तुलना में संरचनाओं पर कम भार पड़ता है।

## lqikjh iRrksa dk vkoj.k ¼'khr½

भारत में प्रत्येक वर्ष लगभग 1000 मिलियन पत्तों का आवरण उपलब्ध होता है। सुपारी पेड़ के पत्तों की तनन शक्ति अधिक होती है तथा ये निम्न तापजनक के साथ ही जैविक रूप से नष्ट होने वाले होते हैं। अतः कागज/प्लास्टिक प्लेट एवं कप के विकल्प के रूप में बेहतर होता है। अतः स्वंय सेवी दलों, छोटे व सीमान्त किसानों तथा भूमिहीन मजदूरों को पत्तों से प्लेट व कप बनाने का स्वचालित मशीन उपलब्ध कराया जा सकता है। ये मशीन पत्तों के अपरद्द को कई उपयोगी एवं पारिस्थितिकी मैत्रता वाले उत्पादों में बदल सकते हैं।

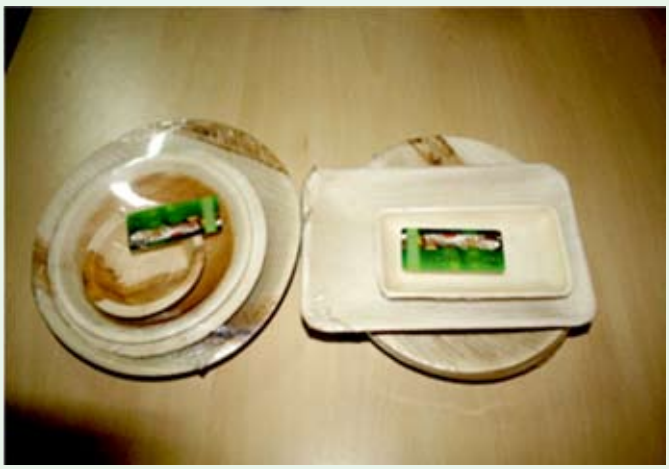



fp= 2½ lqikjh 'khr ls cus IysV ,oa di

fp= 3½ lqikjh 'khr ls IysV ,oa di cukus dh e'khusa

# गोवा में हल्दी की खेती हेतु सस्य प्रणाली

Mk- vMoh jko nlkb[1]] Mk- , l- fç;k noh[2] ,o Mk- ujUn irki flg[3]

## Hkfedk

हल्दी *(करकुमा लांग)* एक महत्वपूर्ण मसाला वाली फसल है और भारतीय औषधीय प्रणाली में इसे रोग निरोधक के रूप में अत्यधिक उपयोग किया जाता है। गोवा की कृषि जलवायु हल्दी की उत्पादन के लिए अनुकूल है जिसे एकल फसल या नारियल के बागानों में अंतर–फसल के रूप में उगाया जा सकता है।

## e nk

इसकी खेती गोवा की सूखी लैटेराइटिक मृदा और कई अन्य मृदाओं में भी हो सकती है, परन्तु बलुई दोमट मृदा इसकी खेती के लिए सर्वोत्तम है।

## tyok;

हल्दी की खेती बरानी एवं सिंचित दोनों ही परिस्थितियों में किया जा सकता है। हल्दी रोपण का उचित समय मई और जून माह के बीच है। मानसून पूर्व वर्षा न होने पर, इस फसल की रोपाई यदि मई माह में की जाती है तो सिंचाई करने की आवश्यकता है ताकि बीज प्रकंद (रिजोम) सूख न जाए और प्रकंदों में अंकुरण हो सके।

## fdLe

गोवा के लिए प्रतिभा, सुदर्शन, प्रभा, केदारम, अलेप्पी तथा आर.सी.टी.–1 उपयुक्त किस्में हैं।

fp= 1% gYnh dh [kr dk n';

[1] ofj"B oKkfud, फल विज्ञान, गोवा के लिए भा.कृ.अनु.प. का अनुसंधान परिसर, एला, ओल्ड गोवा
[2] ofj"B oKkfud, फल विज्ञान, गोवा के लिए भा.कृ.अनु.प. का अनुसंधान परिसर, एला, ओल्ड गोवा
[3] funs'kd, गोवा के लिए भा.कृ.अनु.प. का अनुसंधान परिसर, एला, ओल्ड गोवा

## fuo’k

1. रोपण सामग्री (बीज प्रकंद) : 25–30 क्विंटल प्रति हेक्टयर

   मातृ प्रकंद सर्वोत्तम रोपण सामग्री होती है। मातृ प्रकंद उपलब्ध न होने पर अंगुली प्रकंद/फिंगर राइजोम भी उपयोग किया जा सकता है।

2. गोबर की खाद या कम्पोस्ट : लगभग 30 – 40 टन प्रति हेक्टयर

3. उर्वरक :

| | | |
|---|---|---|
| नत्रजन | : | 175 कि.ग्रा. प्रति हेक्टेयर |
| फॉस्फोरस | : | 75 कि.ग्रा. प्रति हेक्टेयर |
| पोटैशियम | : | 125 कि.ग्रा. प्रति हेक्टेयर |

## [ksr dh rS;kjh

खेत को अच्छी तरह जुताई करके बोने योग्य करना चाहिए। जुताई के दौरान गोबर की खाद की सम्पूर्ण मात्रा डालना चाहिए ताकि मिट्टी के साथ अच्छी तरह मिल जाए। क्यारियां एवं मेड बनाने से पूर्व फॉस्फोरस की सम्पूर्ण मात्रा मिला देना चाहिए ताकि मिट्टी में अच्छी तरह मिल जाए।

## jksi.k

मिट्टी के किस्म एवं खेत परिस्थितियों के अनुसार बीज प्रकंदों का रोपण दो प्रकार से किया जा सकता है –

1- Åaph likV D;kfj;ksa okyh i)fr – 1 मी. चौड़ी एवं 2 – 3 मी. ऊंची सपाट क्यारियां बनाई जाए। क्यारियों में चारों ओर से 30 से.मी. की दूरी रखते हुए प्यालीनुमा गड्डे बनाकर बीज प्रकंदों की रोपाई कर इन्हें ढ़क दिया जाए।

2- esM+ ,oa dwM i)fr & ट्रैक्टर पर लगे रिजर की सहायता से 45 से.मी. की दूरी मेड़ एवं कुंड बनाए जाए ताकि मेड़ की ऊंचाई 25–30 से.मी. हो। मेड़ की ऊपरी भाग में 20 से.मी. दूरी बनाए रखते हुए बीज प्रकंदों की रोपाई की जाए। यह पद्धति उच्च वर्षापात वाले क्षेत्र के लिए उपयुक्त है जिससे प्रकंदों की सड़ने की समस्या न हो, विशेषकर जब अंतर–फसल के रूप में नारियल बगानों में उगाया जा रहा हो।

fp= 2% gYnh izfrHkk ,oa izHkk iztkfr;ka

रोपाई से पूर्व एक लीटर पानी में 2.5 ग्राम ब्लिटोक्स तथा 2 ग्राम बेविसटिन मिलाकर उसमें बीज प्रकंदों को डुबाकर उपचारित किया जाना चाहिए ताकि खेतों में प्रकंदों में सड़न की समस्या न हो। क्यारियों एवं मेड़ों व फरों में 6–8 से.मी. गहराई में प्रकंदों की रोपाई की जाए।

रोपाई के 120 दिनों के पूर्व नत्रजन एवं पोटैशियम को चार भागों में (रोपाई के 30, 60, 90 एवं 120 दिनों में) दिया जाए। प्रत्येक बार उर्वरक देने के बाद इस पर मिट्टी चढ़ा दिया जाए।

### ikèk lqj{k.k

1. बीज प्रकंदों को ऊपर बताए विधि से उपचार किया जाए।
2. फसल पर 17 मि.ली. डायमेथोएट और 30 ग्राम ब्लिटोक्स (कॉपर आक्सी क्लोराइड या 20 ग्राम कैप्टन) 10 लीटर पानी में मिलाकर छिड़काव करें ताकि पत्तों को खाने वाली सूंडी, तना छेदक तथा पत्तों की धब्बों वाले रोग से निजात पाया जा सके।

**dVkbZ ,oa mit %** हल्दी की किस्म, मृदा एवं नमी की स्तर के अनुसार, फसल 8–10 माह में तैयार हो जाती है, जब पत्तियां गिरने लगती हैं। यदि मिट्टी ज्यादा सूखी हो तो कटाई से 3 दिन पूर्व हल्की सिंचाई कर के प्रकंदों को खोद लें। एक हेक्टेयर क्षेत्र से औसतन 25 से 30 टन ताजे प्रकंदों की आशा की जा सकती है।

## gYnh dk izlaLdj.k

अंगुली प्रकंदों को मातृ प्रकंदों से अलग किया जाता है, और सामान्यतः बीज सामग्री के रूप में रख दिया जाता है। बेचने के लिए सूखी हल्दी प्राप्त करने हेतु ताज़ी हल्दी का उपचार किया जाता है। ताजे प्रकंदों को एकत्रित कर साफ करके उनका प्रसंस्करण किया जाता है। प्रसंस्करण में ताजे प्रकंदों को उबालकर, सुखाकर, पालिश किया जाता है।

1- **mcky;u %** उन्नत बॉयलर में दो आयताकार छिद्रित कंटेनर को एक बाहरी कंटेनर में रखा जाता है जिस पर ढक्कन होती है। बाहरी कंटेनर भी आयताकर 1.2 मी x 0.9 मी. x 0.9 मी आकार में 3 मि.मी. मोटी स्टील की चादर से बनी होती है जिस पर कसा हुआ ढक्कन लगा रहता है। दोनों छिद्रित कंटेनर 0.5 x 0.75 x 0.5 आकार की और 2 मि.मी. मोटी छिद्रित स्टील चादर की बनी होती है। प्रत्येक की 75 कि.ग्रा. प्रकंद वहन करने की क्षमता होती है। छिद्रित कंटेनरों को आसानी से उठाने के लिए उन पर हुक लगे होते हैं। दोनों छिद्रित कंटेनर लोहे के स्टैंड पर रखे जाते हैं। पूरी ईकाई का भार 125 कि.ग्रा. होता है।

fp= 3% gYnh ¼d½ ifrHkk iztkfr ¼[k½ iHkk iztkfr

साफ किए गए प्रकंदों को दोनों छिद्रित कंटेनरों में भरा जाता है। बाहरी कंटेनर में तीन चौथाई भाग पानी भरकर इसमें सोडियम बायकार्बोनेट 100 ग्राम प्रति 100 लीटर की दर से मिलाया जाता है। प्रकंदों से भरे दोनों छिद्रित कंटेनरों को बाहरी कंटेनर में रखकर नीचे से गर्म किया जाता है। चूंकि बाहरी कंटेनर में ढक्कन लगी होती है अतः पानी उबलने लगता है जिससे प्रकंद अच्छी तरह पकता/उबलता है। जब प्रकंट मुलायम हो जाते हैं और उनसे अच्छी महक निकलती है तो उनको निकाल कर उनके स्थान पर फिर ताजे प्रकंद भर दिए जाते हैं ताकि बाहरी कंटेनर के गर्म पानी का दोबारा उपयोग हो सके।

2- l[kkuk % उबले प्रकंदों को धूप में सुखाया जाता है, इनको पूरी तरह से सूखने में 12 से 15 दिन लगते हैं। प्रकंदों को तब तक सुखाया जाता है जब तक वे सक्त, भंगुर एवं तोड़ने पर धातु जैसी आवाज न करें। प्रकंदों को भरने, निकालने एवं कंटेनरों को लगाने के लिए दो मज़दूर पर्याप्त होते हैं।

3- ikfy'k djuk % सूखे प्रकंदों को साफ करने के बाद रोटेटर ड्रम में या हाथ से घुमाने वाले ड्रम में डालकर पालिश किया जाता है। सूखे प्रकंदों को पालिश करने के लिए सेन्ट्रल एक्सिस पर लगे षटकोणीय लकड़ी के ड्रम का भी उपयोग किया जा सकता है जो पॉवर चालित हो।

उपचार की गुणवत्ता एवं अंतिम सूखी उपज, हल्दी के किस्म पर निर्भर होता है। सामान्यतः सूखी/उपचारित हल्दी ताजे प्रकंदों का 17–20 प्रतिशत होता है। मातृ प्रकंदों से अधिक उपज प्राप्त होती है।

# अदरक का व्यवसायिक उत्पादन हेतु सस्य प्रणाली

Mk- vMoh jko nslkb[1] ,oa Mk- ujUnz izrki flag[2]

अदरक (*ज़िंजिबर अफिसिनेल*) एक शाकीय पादप है, जिसे भारत एवं चीन क्षेत्र का स्थानीय पादप माना जाता है। इसकी खेती इसकी भूमिगत प्रकंदी से प्राप्त आर्थिक लाभ के लिए किया जाता है। यह एक महत्वपूर्ण प्रकंदी मसाला फसल है जिसे भारत में प्रचीन काल से उगाया जाता है ताकि इसकी भूमिगत प्रकंदों को व्यंजनों एवं औषधीय उद्देश्यों के लिए उपयोग किया जा सके चूंकि यह परम्परागत भारतीय औषधीय प्रणाली आयुर्वेदिक औषधियों के लिए महत्वपूर्ण पौध है। संस्कृत में इसे 'श्रंगवेर' कहा जाता है जिसका अर्थ हीरण के सींग जैसा आकार वाला है। महाभारत जैसे भारतीय महाकाव्य एवं कंनफ्यूसियस के लेखनों से सूचित होता है कि अदरक एक मसाला है एवं प्राचीन औषधीय बूटी भी है।

विश्व में अदरक की खेती 2,73,736 हेक्टेयर में होती है और आकलन के अनुसार 16,15,974 टन उत्पादन एवं उत्पादकता 5.9 टन प्रति हेक्टेयर है। भारत अदरक उत्पादन में विश्व में अग्रणी है और इसके बाद चीन, जापान, इन्डोनेशिया, आस्ट्रेलिया, नाईजीरिया और वेस्ट इंडीस का स्थान है। हमारे देश में केरल, कर्नाटक, गुजरात, अरूणाचल प्रदेश, असम, ओडीशा, हिमाचल प्रदेश, पश्चिम बंगाल, मेघालय और सिक्किम अदरक उत्पादन करने वाले प्रमुख राज्य हैं। कुल अदरक उत्पादन का 30 प्रतिशत भाग सूखे अदरक (सोंठ) के रूप में परिवर्तित किया जाता है जब कि 50 प्रतिशत भाग कच्ची अदरक के रूप में उपभोग किया जाता है एवं शेष भाग बीज सामग्री के रूप में उपयोग किया जाता है। विश्व में प्रति वर्ष 300,000 टन अदरक आयात किया जाता है जिससे भारतीय अदरक को निर्यात करने की अपार सम्भावनाएं हैं। सूखे अदरक का उत्पादन मुख्यतः केरल राज्य में होता है और इसका बड़ा भाग निर्यात किया जाता है। यद्यपि गोवा में इस फसल के अंतर्गत बहुत ही कम क्षेत्रफल है, परन्तु वर्तमान समय में इसकी खेती जोर पकड़ रही है चूंकि उत्पादन प्रौद्योगिकी एवं साथ ही उच्च उपज वाली किस्मों की उन्नत बीज सामग्री भी गोवा स्थित भा.कृ.अनु.प. के संस्थान द्वारा उपलब्ध किया जा रहा है।

अदरक ने अपने दोहरे गुणों, जैसे कि मसाला एवं औषधीय बूटी के लिए एशियाई एवं प्राच्य पाक कला में विशिष्ट उपस्थिति दर्ज करायी। इसके औषधीय गुण अनेक उदर संबंधी समस्याओं, दस्त संबंधी एवं उल्टी, वात संबंधी एवं गठिया दर्द, आमवात व मांस पेशियों में ऐंठन, दमा व फेफड़े संबंधी श्वसन रोग के लिए उपयोगी है। इसके अन्य चिकित्सा संबंधी गुणों में रक्त प्रवाह को बढ़ाना, शरीर एवं गुर्दों से विषैले पदार्थ निकालना, त्वचा पोषण आदि सम्मिलित हैं।

**tyok;q ,oa enk &** अदरक की खेती गरम 28 से 32° सें. एवं नमी वाली जलवायु में उचित होती है। रोपण व अंकुरण के दौरान सामान्य वर्षपात, वृद्धि की पूरी अवधि में सुवितरित वर्षा तथा कटाई के दौरान सूखी जलवायु अदरक की सफल खेती के लिए उपयुक्त हैं। अदरक को बरानी एवं सिंचित दोनों ही स्थितियों में, समुद्री सतह से 1800 मी. की ऊंचाई वाले क्षेत्र में, एकल फसल के रूप में खुले खेतों में या मिश्रित या अन्तर–फसल के रूप में उगाया जा सकता है।

अदरक की व्यवसायिक उत्पादन के लिए बलुई दोमट, लाल दोमट या लेटीरैटिक दोमट मिट्टी जिसमें प्रचुर मात्रा में खाद हो एवं जिसकी पी.एच. स्तर 5.4 से 6.5 के बीच हो, उपयुक्त होती है। जलमग्न मृदा अनुपयुक्त होती है। पर्वतीय क्षेत्र के हल्के ढ़लानों में जहां की मृदा में उपर्युक्त गुण हो एवं वर्षपात समान रूप से वितरित हो, वहां भी अदरक की खेती हो सकती है। फसल की सोखने वाली प्रवृति के कारण यह सिफारिश की जाती है कि एक ही खेत में वर्ष दर वर्ष अदरक की खेती नहीं करनी चाहिए एवं परिस्थितियों के अनुरूप बारी बारी से उपयुक्त फलीदार फसलों का उत्पादन किया जाना चाहिए।

[1] ofj"B oKkfud, फल विज्ञान, गोवा के लिए भा.कृ.अनु.प. का अनुसंधान परिसर, एला, ओल्ड गोवा
[2] fun'kd, गोवा के लिए भा.कृ.अनु.प. का अनुसंधान परिसर, एला, ओल्ड गोवा

## fdLe

अदरक उगाने वाले विभिन्न क्षेत्रों में इसके विभिन्न किस्मों का उपयोग किया जाता है। स्थानीय किस्में वायनाड, मारन (केरल); नदिया, असम लोकल, चायना (उत्तर पूर्वी पर्वतीय क्षेत्र); हिमाचल (हिमाचल प्रदेश एवं कर्नाटक) तथा उन्नत किस्में जैसे वरदा, महिमा, रेजाता (केरल); सुप्रभा, सुरूचि, सुरवी (ओडीशा); हिमगिरी (हिमाचल प्रदेश) देश के परम्परागत अदरक उत्पादन क्षेत्रों में खेती की जाती है। रियो–डी–जेनेरियो एक विदेशी किस्म है जिसकी खेती केरल एवं कर्नाटक के कुछ भागों में किया जा रहा है। इन किस्मों के अभिलाक्षणिक गुण नीचे तालिका–1 में दर्शाया गया है।

| fdLe | vkSlr rktk mit ¼Vu ifr gDV;j½ | ifjiDork ¼fnu½ | dqy Lk[kh mit ¼ifr'kr½ | ØM Qkbcj ¼ifr'kr½ | vkfy;kjflu ¼ifr'kr e½ | vko';d rsy ¼ifr'kr½ |
|---|---|---|---|---|---|---|
| आईआईएसआर–वरदा | 22.6 | 200 | 20.7 | 4.5 | 6.7 | 1.8 |
| सुप्रभा | 16.6 | 229 | 20.5 | 4.4 | 8.9 | 1.9 |
| सुरूचि | 11.6 | 218 | 23.5 | 3.8 | 10.0 | 2.0 |
| सुरवी | 17.5 | 225 | 23.5 | 4.0 | 10.2 | 2.1 |
| हिमगिरी | 13.5 | 230 | 20.6 | 6.4 | 4.3 | 1.6 |
| आई.आई.एस.आर. महिमा | 23.2 | 200 | 23.0 | 3.26 | 4.48 | 1.72 |
| आई.आई.एस.आर. रीजाता | 22.4 | 200 | 19.0 | 4.0 | 6.3 | 2.36 |
| चयना | 9.50 | 200 | 21.0 | 3.4 | 7.0 | 1.9 |
| असम | 11.78 | 210 | 18.0 | 5.8 | 7.9 | 2.2 |
| मारन | 25.21 | 200 | 20.0 | 6.1 | 10.0 | 1.9 |
| हिमाचल | 17.27 | 200 | 22.1 | 3.8 | 5.3 | 0.5 |
| नदिया | 28.55 | 200 | 22.6 | 3.9 | 5.4 | 1.4 |
| रियो–डी–जेनेरियो | 17.65 | 190 | 20.0 | 5.6 | 10.5 | 2.3 |

स्त्रोत – आई.आई.एस.आर., केलीकट

fp= 1½ vnjd ojnk iztkfr

वरदा, हिमाचल और महिमा किस्मों का मूल्यांकन गोवा के लिए भा.कृ.अनु.प. का अनुसंधान परिसर, गोवा द्वारा किया गया एवं इन्हें गोवा के परिस्थितियों के लिए उपयुक्त पाया गया है।

## [krh dh i)fr

### ikjfEHkd r|;kfj;k

मिट्टी की अच्छी तरह जुताई करना चाहिए ताकि खेत भुरभरा बन सके। जुताई के दौरान गोबर की खाद का एक तिहाई भाग (लगभग 50 टन प्रति हेक्टेयर) डाला जाना चाहिए और मिट्टी में अच्छी तरह मिला देना चाहिए। अदरक उगाने के लिए 'चौड़ा बेड एवं कुंड' या 'रिड्ज एवं कुंड' पद्धति को अपनाया जा सकता है। पहली पद्धति के संदर्भ में सुविधाजनक आकार के 15 से.मी. ऊंची एवं 1 मी. चौड़ी क्यारियां बनाया जाना चाहिए एवं क्यारियों की बीच की दूरी 50 से.मी. रखा जाए। रिड्ज–फरो पद्धति में 40–45 से.मी. की कुंड बनायी जानी चाहिए।

### jki.k dk le; ,oa _rq

सामान्यतः अदरक की रोपाई के लिए मई माह में मानसून पूर्व बारिश के बाद का समय उपयुक्त माना जाता है। रोपण के समय मिट्टी पूरी तरह सूखी नहीं होनी चाहिए, न ही अधिक नम। सिंचाई वाले क्षेत्र में रोपण कार्य इससे पूर्व मार्च माह में भी किया जा सकता है ताकि जल्द उपज का लाभ उठाया जा सके। जल्द रोपण करने पर प्रकंदों के सड़न भी कम होता है।

### jki.k lkexh ,oa jki.k i)fr

रोपण के लिए स्वस्थ एवं सुदृढ़ बीज प्रकंदों का उपयोग किया जाना चाहिए। रोपण पद्धति, अंतराल के अनुसार लगभग 1500–2500 कि.ग्रा. प्रति हेक्टेयर बीज प्रकंदों का उपयोग किया जाता है। बीजों के लिए संग्रहित प्रकंदों को 20 से 50 ग्राम के टुकडों में काटा जाता है परन्तु प्रत्येक टुकड़े में 1 या दो कलिकाएं (बड) होनी चाहिए। बीज प्रकंदों के टुकडों के आकार के अनुसार विभिन्न क्षेत्रों में अंतराल, रोपण पद्धति, बीज दर निर्भर करता है। यदि टुकडों का भार 20 से 25 ग्राम है

fp= 2% vnjd ¼d½ fgekpy izkfr ¼[k½ ojnk izkfr

तो 25 से.मी. x 25 से.मी. ऊंची क्यारियों वाली पद्धति के लिए 1500–1800 कि.ग्रा. प्रति हेक्टेयर बीज प्रकंदों की आवश्यकता होगी। रिड्ज–फरो पद्धति में 40–45 से.मी. की दूरी पर खुले रिड्ज में पौधो के बीच की दूरी 25 से.मी. रखने पर लगभग 2500 कि.ग्रा. प्रति हेक्टेयर बीज प्रकंदों की आवश्यकता होती है। रोपाई से पूर्व प्रकंद टुकडों को पानी में मैंकोजेब 0.3 प्रतिशत (3 ग्रा. प्रति ली. जल) घोलकर आधे घंटे तक पूरी तरह सोखा जाना चाहिए एवं इसके पश्चात इन्हें छांव में 2 घंटे तक सुखाना चाहिए। रोपाई से पूर्व शेष दो तिहाई गोबर (20 टन प्रति हेक्टेयर) या कम्पोस्ट 25–30 टन प्रति हेक्टेयर की दर से क्यारियों पर छिड़काव करना या रोपण के समय खड्डों में डाला जाना चाहिए। *ट्राइकोडर्मा हरजियानम* 10 कि.ग्रा. प्रति हेक्टेयर की दर से गोबर की खाद में अच्छी तरह मिलाकर ऊंची क्यारियों या रिड्ज पर डाला जाना चाहए। रोपण के दौरान नीम की खली 2 टन प्रति हेक्टेयर की दर से उपयोग करने पर प्रकंद सड़न रोग/नेमाटोड से बचाव तथा उपज में वृद्धि होती है। अदरक के लिए सिफारिश की गई उर्वरकों की मात्रा 100 कि.ग्रा. नत्रजन, 50 कि.ग्रा. फॉस्फोरस तथा 205 एवं 50 कि.ग्रा. पोटैशियम आक्साइड प्रति हेक्टेयर है। उर्वरकों को भागों में बांटकर (तालिका–2) के अनुसार दिया जाना चाहिए। फास्फोरस की सम्पूर्ण मात्रा रोपण से पूर्व खाद के साथ बेसल डोज के रूप में दिया जाना चाहिए।

rkfydk&2 vnjd ds fy, moZjdksa dh lwph ¼izfr gsDVs;j½

| moZjd | Cksly Mkst | 40&45 fnu ds ckn igyh VkWi Mªsflax | 95&100 ds ckn nwljh VkWi Mªsflax |
|---|---|---|---|
| नत्रजन | – | 50 कि.ग्रा. | 50 कि.ग्रा. |
| फॉस्फोरस पेंटाक्साइड | 50 कि.ग्रा. | – | – |
| पोटेशियम आक्साइड | – | 25 कि.ग्रा. | 25 कि.ग्रा. |
| खाद/कम्पोस्ट | 20 टन | – | – |
| ट्राइकोडर्मा | 10 कि.ग्रा. | – | – |
| नीम की खली | 2 टन | – | – |
| मलचिंग | रोपन के बाद हरी पत्तियों के साथ मल्च किया जाना चाहिए | पौध निकलने के बाद हरी पत्तियों के साथ मल्च किया जाना चाहिए | – |

## cht izdUnksa dk jksi.k

ऊंची क्यारियों पर 25 x 25 से.मी. दूरी पर या रिड्ज पर पौध से पौधो के बीच की 20 से.मी. दूरी पर छोटे छोटे खड्डे बनाकर उनमें उपचारित बीज प्रकंदों का एक टुकड़ा डालकर मिट्टी की पतली परत से ढ़क देना चाहिए। इस पर हरी पत्तियों का मल्च बनाना है ताकि बीज प्रकंदों के ऊपर का मिट्टी बहकर वे सूख न जाए। प्रत्येक उर्वरक टॉप ड्रेसिंग के बाद क्यारियों पर मिट्टी डालना जरूरी है। ज़िंक की कमी वाली मृदा में बेसल डोज के रूप में ज़िंक उर्वरक का 6 कि.ग्रा. प्रति हेक्टेयर (30 कि.ग्रा. ज़िंक सल्फेट/हेक्टेयर) की दर से उपयोग करने पर अच्छी उपज प्राप्ति होती है।

## jksi.k Ik'pkr~ ns[kjs[k

प्रत्येक टॉप ड्रेसिंग से पूर्व खरपतवारों की सफाई अति महत्वपूर्ण कार्य है। इसके बाद मिट्टी से ढकना और हरी पत्तियों से मल्चिंग करने पर प्रकंदों के ऊपर की मिट्टी के बहने से बचाया जा सकता है जिसके फलस्वरूप प्रकंदों के विकास के लिए पर्याप्त मिट्टी उपलब्ध होगी, साथ ही साथ खरपतवारों से बचाव एवं नमी की संरक्षण में सहायता मिलेगी। अत्यधिक वर्षा जल

fp= 3% vnjd d% [kr dk n';

की निकासी के लिए जल निकासी की सुविधा बनानी चाहिए। घुलनशील एनःपीःके को 15:15:15 अनुपात में 10 ग्राम प्रति लीटर की दर से मिलाकर रोपण के 150 दिनों बाद पर्णीय छिड़काव करने से बरानी क्षेत्रों में लाभदायक सिद्ध होता है।

## ikèk lqj{k.k

अदरक की फसल प्रकंद सड़न रोग के प्रति संवेदनशील है जिसे साफ्ट रॉट कहते हैं और जो मुख्यतः *पैथियम अफाकनडरमाटम, पी. वेक्सनस् या पी. मैरियोटयलम* के कारण होता है। ये मृदा से उत्पन्न कवक रोग है जो कॉलर (ग्रीवा) एवं प्रकंदों को प्रभावित करता है, जिससे प्रकंद उपज में क्षति होती है। दक्षिण पश्चिमी मानसून प्रारम्भ होने पर नमी बढ़ जाती है जिससे ये कवक कई गुणा बढ़ जाते हैं। ये रोगाणु छोटे अंकुरों को ज्यादा प्रभावित करते हैं। पत्ते पीले पड़ जाना इसका प्रारम्भिक लक्षण हैं जो कॉलर रीजन में सूडोस्टेम के सड़ने से होता है। सड़ी हुई कॉलर को पकड़ कर हल्के से खींचने पर सूडोस्टेम निकल आता है। ये सड़न बढ़कर अन्य विकासशील प्रकंदों को प्रभावित करता है जिससे उनमें भी मृद गलन हो जाता है। प्रभावित प्रकंदों को रोपण के लिए उपयोग करने पर स्वस्थ मृदा में भी यह रोग फैल जाएगी।

फसल उत्पादन के लिए स्वस्थ खेत, बीज सामग्री का चयन, जल निकासीयुक्त खेत का चयन, नीम की खली के साथ *ट्रायकोडर्मा हरजियानम* (10 कि.ग्रा. प्रति हेक्टेयर) का उपयोग तथा रोपण प्रकंदों को मैंकोजेब 0.3 प्रतिशत (10 कि.ग्रा. प्रति हेक्टेयर) से ऊपर वर्णित पद्धति से उपचारित करने के बाद उपयोग आदि से रोग के प्रकोप में कमी आएगी। खेत में प्रारम्भिक लक्षण दिखते ही प्रभावित पौधों एवं आसपास के पौधों को कॉपर आक्सी क्लोराइड द्रव्य (3 ग्राम प्रति लीटर) से भीगोना (ड्रेन्च) चाहिए ताकि रोग का फैलाव न हो। आवश्यकता होने पर यह उपचार 20–25 दिनों के अंतराल पर दोहराया जाना चाहिए।

मृद गलन रोग के जैसे ही लक्षणों के साथ एक और रोग, बैक्टीरियल विल्ट (जीवाणु मुरझाना) अदरक में पाया जाता है, जो *रालस्टोनिया सोलॉनेसियारम* बयोवार–3 से फैलता है। यह भी एक मृदा एवं बीज से उत्पन्न रोग है जो दक्षिण पश्चिमी मानसून के दौरान फैलता है। सूडोस्टेम के ग्रीवा में जल सिक्त धब्बे (वाटर सोक्ड स्पॉट) उभरते हैं जो ऊपर और नीचे की ओर बढ़ती है। रोग लक्षण हैं नीचे के पत्तों के सीमान्त क्षेत्र में सिकुड़न एवं नीचे की ओर लटकना फिर इन लक्षणों का ऊपर के पत्तों की ओर बढ़ना हैं। पहले सबसे नीचे के पत्तों में पीलापन आ जाता है और धीरे धीरे यह ऊपर के पत्तों को भी प्रभावित करता है।

रोग पूरी तरह व्याप्त होने पर पूरी पौध में पीलापन एवं शिथिलता आ जाती है। प्रभावित सूडोस्टेम के संवहनी ऊतकों में गहरी धारियाँ दिखाई पड़ती हैं। प्रभावित सूडोस्टेम तथा प्रकंद को दबाने पर संवहनीय तंतुओं से दूध जैसा तरल पदार्थ निकलता है, अन्ततः प्रकंद सड़ जाते हैं। मृद गलन रोग निवारण के लिए किए जाने वाले उपचार इस रोग के उपचार में भी आते हैं। रोपण के बीज प्रकंद रोगमुक्त खेतों से प्राप्त करना आवश्यक है। रोपण से पूर्व बीज प्रकंदों को स्ट्रेप्टोसाइक्लिन 200 पी.पी.एम. में 30 मिनट तक सोखना चाहिए फिर इन्हें छांव में सुखाना चाहिए। यदि खेत में एक बार रोग लक्षण दिखाई पड़े तो समस्त क्यारियों को बोरडियक्स मिश्रण 1 प्रतिशत या कॉपर आक्सीक्लोराइड 0.2 प्रतिशत में ड्रेन्च (भिगोना) चाहिए। अदरक के फसल को नेमाटोड्स (*मेलोयडोगाइन* प्रजातियों, *रेडोफोलस सिमिलिस* तथा *प्रेटीलेंचस प्रजातियों*) से भी काफी नुकसान होता है। प्रभावित पौधों में विकास रूक जाना, पत्तों की क्लोरोसिस, पत्तों के ऊतकों का क्षय आदि दिखाई देते हैं। अभिलक्षणिक रूट गाल एवं प्रकंदों पर घाव से प्रकंदों में सड़न का रोग फैल जाता है। इस समस्या के समाधान के लिए ग्रसित प्रकंदों को 10 मिनट तक गर्म पानी ($50^0$ से.ग्रे.) उपचार, नेमाटोडमुक्त प्रकंदों का उपयोग, अदरक क्यारियों को 40 दिनों तक धूप में छोड़ना आदि है। नेमाटोड मुक्त किस्म – आई.आई.एस.आर. महिमा का विशेष प्रयोग किया जा सकता है।

सूडोस्टेम के निचली क्षेत्र में एक छोटा छिद्र होना शूट छिद्रक रोग ग्रसन का लक्षण है। यह एक प्रमुख कीट है जिसका डिंभक में प्रवेश करता है और आंतरिक ऊतकों को खाने लगता है जिससे प्रभावित सूडोस्टेम के पत्तों में पीलापन आ जाता है और पत्ते सूखने लगते हैं। सूडोस्टेम पर छिद्र होना एंव उससे फ्रास रिसना तथा मुरझाई पीली शूट आदि इस रोग के अभिलक्षण हैं। एक समेकित योजना के अंतर्गत धड्मतना की जुलाई–अगस्त (15 दिनों के अन्तराल पर) की छंटाई तथा सितम्बर–अक्तूबर (एक माह के अन्तराल में), मेलाथियान (0.1 प्रतिशत) का छिड़काव असरदार होता है।

## mi t ikfIr ,o i.cèku

रोपण के 6 माह बाद से ही उपज प्राप्त किया जा सकता है, जो निर्भर करता है कि उपज का उपयोग कैसे किया जाएगा। सामान्यतः रोपण से 8–9 माह में परिपक्व अदरक प्रकंद तैयार हो जाते हैं, और पत्तियां धीरे–धीरे सूखने लगती हैं। परिपक्वता के बाद प्राप्त इस प्रकार के प्रकंद बीजों के रूप में भंडारित किए जा सकते हैं या सूखे अदरक तैयार किया जा सकता है। प्रकंदों को हाथों से खोद कर या मेकानिकल हारवेस्टर से निकाला जा सकता है। सूखी पत्तियाँ एवं जड़ आदि प्रकंद से अलग किया जाता है और इन पर लगी मिट्टी को साफ कर लिया जाता है। ताजे उपभोग के लिए 6 माह बाद प्रकंद उपज प्राप्त किया जा सकता है जिन पर बहुत ही कम या रेशे नहीं होते हैं।

बीज सामग्री के रूप में उपयोग किये जाने वाले प्रकंद स्वस्थ पौधों से (जो कीट या अन्य रोगों से मुक्त हों) निकालकर अलग रखा जाना चाहिए। बीज प्रकंदों को सूखे परन्तु ठंडे एवं हवादार स्थान पर रखा जाना चाहिए। बीज प्रकंदों को जमीन पर गड्डों में कई परतों में रखा जा सकता है। पहले प्रकंद बिछा कर उस पर सूखा बालू डालना चाहिए और इस पर दूसरी परत रखी जानी चाहिए। ऊपरी सतह को छिद्रोंवाली लकड़ी तक्त या सूखी पत्तियों से ढक देना चाहिए। भूमिगत खड्डों को जो छांव में हो एवं जल जमाव से मुक्त हों, को भी प्रकंदों के भण्डारण हेतु उपयोग किया जा सकता है। पूरी तरह परिपक्व, स्वस्थ प्रकंद ही भण्डारण के लिए चुना जाता है।

लगभग 15 से 28 टन ताजे प्रकंदों की उपज एक हेक्टेयर क्षेत्र से आठ या नौ माह में प्राप्त किया जा सकता है।

# गोवा में प्राकृतिक संवातित पोलिहाउस के अन्तर्गत जर्बेरा की खेती – एक लाभकारी व्यवसाय

Mk- ,e- Fkxe[1]] Mk- erykk tfy;V xIrk[2]] Mk- ,l- fi;k noh[3]] Mk- lQhuk ,l-,-[4]

जर्बेरा *(जर्बेरा जैमेसोनी जी.जे. बोलस ऐक्स हूकर एफ.)* ऐस्टेरेसीए वर्ग से संबंधित है, यह एक प्रमुख कतरित पुष्प है, जिसकी खेती घरेलू व निर्यात बाजार के लिए की जाती है। जर्बेरा में कई विदेशी किस्में उपलब्ध हैं तथा अनुकूल जलवायु में इसकी खेती कतरित पुष्प फसल के रूप में किसानो के लिए लाभकारी होती हैं। गोवा एक छोटा सा समुद्री तटवर्ती राज्य है, जहां पूरे वर्ष मौसम की स्थिति संतुलित होती है। एक अन्तर्राष्ट्रीय पर्यटन स्थल होने के नाते, कतरित पुष्पों और खुले पुष्पों की आवश्यकता बहुत अधिक होती है और पर्यटन के मौसम में तो इसकी मांग सर्वाधिक हो जाती है। किन्तु राज्य की पूरी पुष्पों की मांग की पूर्ति महाराष्ट्र और कर्नाटक जैसे पड़ोसी राज्यों से निर्यात द्वारा होती है।

## fdLe

इसकी किस्मों को दो वर्गों में विभाजित किया जाता है जैसे, सामान्य जर्बेरा और लघु जर्बेरा। व्यावसायिक कतरित पुष्प उत्पादन के लिए सामान्य जर्बेरा की आवश्यकता है जबकि गृह वाटिका गमले आदि के लिए लघु जर्बेरा की किस्में बहुत अनुकूल होती हैं। जर्बेरा की किस्में कई रंगों में उपलब्ध हैं जैसे संतरी, पीला, क्रीम, सफेद, गुलाबी, लाल, सिन्दूरी, मैरून तथा कई बीच के रंग अच्छे उत्पादन और अच्छी कीमत प्राप्त करने की दृष्टि से एवं किस्मों का ध्यानपूर्वक चयन करना बहुत महत्वपूर्ण है। गोवा की स्थिति के अन्तर्गत डल्मा (सफेद), डैना एलन (पीला), रोजालिन (गुलाबी) तथा सवॉनाह (लाल) किस्में पोलिहाउस में सफलतापूर्वक उगाई गई हैं। पोलिहाउस खेती के लिए ऊत्तक संवर्धन वाले पौधें को सक्कर्स की तुलना में अधिक प्राथमिकता मिलती है, क्योंकि इनसे बढ़िया पुष्प प्राप्त होती है।

## e`nk vko';drk vkj fol Øe.k

जर्बेरा उत्पादन की सफलता खेती मृदा गुणवत्ता पर निर्भर है। मृदा में पी.एच. और विद्युतीय चालकता क्रमशः 5.5–6.5 तथा लगभग 1 मी. एस./से.मी. होनी चाहिए। जर्बेरा सरस शाकीय पौधा है और इसके लिए छिद्रिल व अपक्षय मृदा की आवश्यकता होती है तथा 50–70 तक गहराई होनी चाहिए ताकि इसकी सही वृद्धि हो सके व जड़ों का विकास होता रहे। सामान्य रूप से देशी या कृमि खाद, चावल की भूसी और कोकोपीट के साथ 60:40 के अनुपात में मिलाकर अनुकूल मीडि या तैयार किया जाता है। सौरीकरण या रासायनिक धूम्रको के माध्यम से मृदा को संक्रमण हीन बनाना चाहिए। एक रासायनिक धूम्रक फॉर्मेलिन का व्यावसायिक उपयोग 7.5–10 ली. प्रति 100 वर्ग मी. क्षेत्र के हिसाब से किया जाता है। इसे 10 गुने पानी से असांद्रित करके मिट्टी में पूरा सोखा जाता है। इसके लिए विशेष रूप से फव्वारा का प्रयोग किया जाता है। उपचारित मिट्टी को हवा से बचाने के लिए एक सप्ताह तक पोलिथीन की चादर से ढक देना चाहिए। उसके बाद रसायन के अवशेष हटाने के लिए मिट्टी को पानी से सींचा जाता है। इस उपचार के बाद 2 सप्ताह तक प्रतिक्षा करनी होती है और तब पौधरोपण का कार्य किया जाता है। सतह पर 70 से.मी. चौड़ाई के हिसाब से क्यारी उठाई जाए जिसकी ऊंचाई 45 से.मी. की हो, क्यारी इस प्राकार बनाई जाय कि इसके शीर्ष की चौड़ाई 60 से.मी. की हो। जड़ों के बेहत्तर विकास और स्थापन हेतु मृदा क्यारी में प्रारंम्भिक मात्रा के रूप में 2.5 कि.ग्रा. सुपर फॉस्फेट और 0.5 कि.ग्रा. मैग्निशियम सल्फेट प्रति 10 वर्ग मी. के हिसाब से प्रयोग किया जाता है।

[1] Okfj"B oKkfud ¼ckxokuh½, गोवा के लिए भा.कृ.अनु.प. का अनुसंधान परिसर, एला, ओल्ड गोवा
[2] oKkfud ¼Ñf"k lajpuk ,o Ik;koj.k iceku½, गोवा के लिए भा.कृ.अनु.प. का अनुसंधान परिसर, एला, ओल्ड गोवा
[3] Okfj"B oKkfud ¼Qy foKku½, गोवा के लिए भा.कृ.अनु.प. का अनुसंधान परिसर, एला, ओल्ड गोवा
[4] oKkfud ¼i"Ik foKku½, गोवा के लिए भा.कृ.अनु.प. का अनुसंधान परिसर, एला, ओल्ड गोवा

## ikèkjki.k ,o n[kHkky

ऊत्तक संवर्धन वाले पौधों को 30 x 30 से.मी. के अन्तराल में लगाया जाता है ताकि प्रति वर्ग मी. में 6–9 पौधे लगाया जा सकें। जर्बेरा के पौधों को लगाते समय इस बात का ध्यान रखा जाय कि पौधों के शीर्ष मिट्टी की सतह से 1–2 से.मी. ऊपर रहें। प्रत्येक पखवाड़े में पौधे के चारों ओर की मिट्टी को हल्का सा ढीला किया जाए जिससे जड़ों को फैलने का स्थान मिलता रहे। पौध लगाने के तुरन्त बाद पौधों कों 3 सप्ताह तक फव्वारे से सिंचाई की जाती है ताकि जड़ों की उपयुक्त वृद्धि हो सके। उसके बाद पौधों को उर्वरक के साथ सिंचाई के लिए टपक विधि का प्रयोग किया जाता है। क्यारियों में उपयुक्त रूप से नमी बनी रहनी चाहिए। इसके लिए पर्याप्त नमी की स्थिति का अनुमान मुट्ठीभर मिट्टी से गेंद बनाकर लगाया जा सकता है। यदि इस मिट्टी से बनी गेंद आसानी से नहीं टूट पाती है तो यह समझा जाना चाहिए कि नमी का स्तर इसमें पर्याप्त है। गरमी के मौसम के दौरान पौधों को सूखने से बचाने के लिए क्यारियों के किनारों को फव्वारे से सींचा जाता है।

## mojhdj.k

जर्बेरा की बेहत्तर और गुणवत्तापूर्ण उपज प्राप्त करने के लिए उर्वरकों का सही मात्रा और समय पर उपयोग बहुत आवश्यक है। पौधरोपण के तुरंत बाद उर्वरकों का प्रयोग और पौध संरक्षण वाले रसायनों का प्रयोग शुरू कर देना चाहिए। बहुमूल्य पौधों की स्थापना के लिए पहले महीने की अवधि महत्वपूर्ण होती है। एन.पी.के. 14:42:14 मिश्रण की 1.5 ग्रा. प्रति ली. के दर से ड्रेंचिंग के बाद 19:19:19, 2 ग्रा. प्रति ली. दर से छिड़काव किया जाता है। पौधे की अधिकतम वानस्पतिक वृद्धि के लिए चौथे सप्ताह से पानी में घुलनशील उर्वरकों की सामान्य मात्रा का प्रयोग किया जाता है। ड्रिपर के माध्यम से उर्वरक और पानी का प्रयोग हर दिन जड़ों के आस–पास किया गया तथा शुरू के तीन महीनों में फूल कलियां को समय समय पर हटाकर पौधों में 20–25 पत्तियां प्रति पौधा निकाले जाते हैं। एन.पी.के. 76 मि.ग्रा. प्रति पौधे के हिसाब से तथा मैग्निशियम सल्फेट 83 मि.ग्रा. प्रति पौधा के साथ तीन महीने तक एक दिन छोड़कर ड्रिप से दिया जाता है। पर्णो के स्थापित हो जाने के बाद कतरित पुष्प उत्पादन के लिए पुष्प कलियां रहने दी जाती है। उर्वरक और पानी की मात्रा वानस्पतिक चरण से प्रजनक चरण तक बदल दिया जाता है। एन.पी.के. का प्रयोग क्रमशः 60,32 और 140 मि.ग्रा./पौधा के हिसाब से ड्रिप से एक दिन छोड़कर दिया जाता है। प्रत्येक 10 दिनों के अन्तराल से उर्वरीकरण के माधम से व्यावसायिक सूक्ष्मपोशक तत्वों से निर्मित (फर्टिलोन) (50 ग्रा.) और चिलेटेड लौह (0.5 ग्रा./ली.) का प्रयोग किया जाता है। हर 10 दिनों में चेलेटेड केल्सियम (0.5 ग्रा./ली.) तथा 0:52:34 (1.5 ग्रा./ली.) का एक बार छिड़काव किया जाता है जिससे गुणवत्तापूर्ण पुष्प उत्पादन हो सके। जर्बेरा में पानी की आवश्यकता लगभग 500–700 मि.ली./पौधा होती है, जो मौसम पर निर्भर करता है।

## ikèk lj{k.k

फफूंदी से बचाने के लिए पौध–रोपण के तुरन्त बाद एक दिन छोडकर फफूंदनाशी दवा डाली जाती है और उसके बाद चूशक थ्रिप्स कीटों व दीमक के नियंत्रण के लिए कीटनाशी दवा का दो बार छिडकाव किया जाता है। अधिक गर्मी व नमी की स्थितियों में थ्रिप्स और दीमकों की प्रमुख समस्या होती है। इसके नियंत्रण के लिए निम्नलिखित कीटनाशी दवाओं को बारी–बारी से छिड़काव जरूरी है जैसे केल्केन (डिकोफोल) रिजेंट (फिप्रोनिल) और बार्टिमेक (ऐबेमेक्टिन) जर्बेरा की खेती में चूर्णक फफूंद, ऐल्टर्नेरिया लीफ स्पौट, पत्ती का छोटा रह जाना तथा जड़–सड़न आम बीमारियां हैं। रोगनिरोधक दवाओं के छिड़काव के बाद विशिष्ट फफूंदनाशी दवाओं को संस्तुत किया जाता है।

## i"i rMkb] mi t vkj idftx

जर्बेरा की खेती पोलिहाउस के अन्तर्गत उचित प्रबंध क्रियाओं के साथ तीन वर्ष तक कम लागत पर की जा सकती है। सामान्यतया जर्बेरा में गुणवत्तापूर्ण पुष्प उत्पादन पौधरोपण के तीसरे महीने से प्रारंभ हो जाता है, जब पौधे में 15–20 पत्तियां आ जाती हैं। औसत उपज किस्म के ऊपर निर्भर करती है जो 40–50 पुष्प प्रति पौध प्रति वर्ष होती है। पुष्पों की तुड़ाई तब की जाती है जब पुष्प खिलने के 2–3 दौर पूरे हो जाते हैं और वे पूर्ण रूप से विकसित हो जाते हैं। फूलों को पौधे की सतह से मोड़करके व हिलाडुला कर तोडा जाता है, जिससे मातृ–पौधे को क्षति न पहुंचे। बढ़िया संग्रहण के लिए फूलों को तोड़ने

के तुरंत बाद, उन्हें पानी में रखा जाता है। बाद में अलग–अलग फूलों को 4.5" x 4.5" के पोलिथिन थैलियों में रखा जाता है और 10 फूलों का प्रत्येक बंडल बनाया जाता है। फूलों का श्रेणीकरण प्रायः डंठल की लम्बाई और फूल के व्यास के आधार पर किया जाता है। 'ए' ग्रेड का फूल डंठल 50 से.मी. से अधिक और फूल का व्यास 10–12 से.मी. तक होता है। सामान्य स्थिति के अन्तर्गत, जर्बेरा पुष्प की फूलदान मियाद 8–10 दिन होती है। पुष्प की फूलदान मियाद को बढ़ाने के लिए पुष्प डंठल के कतरित किनारे को $14^0$ सें. तापमान पर चार धंटे तक स्वच्छ पानी में डुबो कर रखा जाए और उसके बाद एक लीटर पानी में सोडियम हाइपो–क्लोराइट 10 मि.ली. प्रति ली. पानी की दर से मिलाकर रखा जाए।

## vkfFkd fo'y"k.k

गोवा में विशेष रूप से सर्वाधिक पर्यटन मौसम के दौरान फूलों की मांग निरंतर बढ़ जाती है। धार्मिक और अन्य दिन–प्रतिदिन के समारोहों में स्थानीय उपयोग के अतिरिक्त, एक अन्तराष्ट्रीय पर्यटक स्थल होने के नाते कतरित पुष्पों की मांग बहुत अधिक होती है। सरकार की आर्थिक सहायता मिलने पर एक पुष्पोत्पादन वर्ष के भीतर ही लागत वापस मिल सकता है। गोवा में केन्द्रीय और राज्य सरकार दोनों की आर्थिक सहायता 90 प्रतिशत तक की होती है, जिसमें अधिकांश निर्धारित लागत आ जाती है, जैसे कि पॉलीहाउस संरचना, पौध सामग्री और सिंचाई संबंधी आवश्यकताएं। एक वर्ष के अन्त में, सम्पूर्ण निर्धारित लागत कम करने के बाद 500 वर्ग मीटर प्रक्षेत्र से 0.39 लाख शुद्ध लाभ आय मिल सकती है। इस प्रकार गोवा में प्राकृतिक हवादार पॉलिहाउस के अन्तर्गत जर्बेरा की खेती लघु एवं मध्यम किसानों के लिए सफल व्यवसाय और आर्थिक रूप से लाभकारी हो सकती है।

ikfygkml d vUrxr dVkbl d fy, r;kj i.k iQfYyr i"i

ikfygkml d vUrxr dVkbl d fy, r;kj i.k iQfYyr i"i

jktkfyu

lokukg

LoPN ikuh e j[k rkt dV i"i

ikfyFkhu vkoj.k e id tcjk i"i

# कोकम *(गारसिनिया इन्डिका)* (चॉइसी) (थौअरस्) की स्थिति, क्षमता एवं सम्भावनाएं

Mk- ,l- fi;k noh[1] Mk- ,e- Fkxe[2] Mk- lQhuk ,l-,-[3]

कोकम जिसका बॉटानिकल नाम है *गारसिनिया इन्डिका* चॉइसी थौअरस क्लूसियासी परिवार से संबंधित है और यह पश्चिमी घाट, विशेषकर कोंकण प्रदेश का स्थानीय जाति है। यद्यपि *गारसिनिया* वंश के लगभग 200 प्रजातियां पूरे एशिया के उष्णकटिबंधीय क्षेत्र में फैले हुए हैं, परन्तु *जी. मैंगोस्टेना, जी. इन्डिका* तथा *जी. गुम्मीगुट्टा* प्रजातियां आर्थिक रूप से महत्वपूर्ण हैं। यह दुर्भाग्य की बात है कि इसके अत्यधिक नैतिक गुण होने पर भी इसका उत्पादन व्यवसायिक रूप से नहीं किया जाता है। कोकम बहुप्रयोजनीय है, अतः स्थानीय लोगों की जीवन शैली में इसका काफी महत्व है। यह इस क्षेत्र का महत्वपूर्ण परन्तु कम दोहन वाला मसाला है। इसमें रक्तशोधक, कसैला, त्वचा के लिए उपयोगी तथा रोग निरोधी गुण हैं। इसके फल से चाशनी, शरबत, आर.टी.एस., अगल (नमकीन रस) आदि बनाया जाता है। इसके फल के छिलके (रिंड) अल्फा–एच.सी.ए. (हाइड्राक्सी) सिट्रिक एसिड का अच्छा स्त्रोत है जो शरीर में चर्बी (वसा) के जमाव को रोकती है। फल के छिलके एन्थोसियनिन के भी अच्छे स्त्रोत हैं जिसे प्राकृतिक खाद्य रंग के रूप में उपयोग किया जा सकता है। फल के सूखे छिलके गोवा के रसोई में खट्टेपन के मुख्य स्त्रोत हैं। कोकम फलों के बीज खाद्य वसा के महत्वपूर्ण स्त्रोत हैं जिसे ''कोकम बटर'' कहा जाता है। इसे मरहम, साबुन, मिष्ठान्न, सौंदर्य प्रसाधन उत्पाद के अलावा रसोई में भी उपयोग किया जाता है।

## xkjflfu;k dh itkfr;k

गारसिनिया एक महत्वपूर्ण वंश है जिसके 200 से भी अधिक सूचीबद्ध प्रजातियां हैं। भारत में उपलब्ध 30 प्रजातियों में से *जी. इन्डिका, जी. गुम्मीगट्टा, जी. मैंगोस्टेना, जी. टिंकटोरिया (जी. एक्साथेकिमस), जी. मोरेल्ला, जी. कोवा* और *जी. होमब्रोनियना* महत्वपूर्ण हैं। कुछ महत्वपूर्ण प्रजातियों का वितरण एवं उपयोग नीचे दर्शाया गया है (नदकर्णी एवं अन्य लेखक, 2001)।

| Øe l- | itkfr dk uke | miyC/k LFkku | vkfFkd eY; |
|---|---|---|---|
| 1. | *जी. अनोमाला* | खासी पर्वत | इस पेड़ से गोंद एवं निचले स्तर का राल प्राप्त होता है। |
| 2. | *जी. एट्रोविडिस* | असम | कच्चे फल करी में उपयोग किये जाते हैं; इसे रेशम को रंगने में फिटकरी के साथ उपयोग किया जाता है। पके फल खाने योग्य होते हैं। |
| 3. | *जी. कमबोजिया* | पश्चिमी घाट, नीलगिरी पर्वत | फल खाने योग्य, बीजों में खाद्य वसा, सूखे छिलके को करी में तथा छाल से पीली गोंद, राल पेंट एवं कलर बनाने में उपयोग किया जाता है। |

[1] Okfj"B oKkfud ¼Qy foKku½, गोवा के लिए भा.कृ.अनु.प. का अनुसंधान परिसर, एला, ओल्ड गोवा
[2] Okfj"B oKkfud ¼ckxokuh½, गोवा के लिए भा.कृ.अनु.प. का अनुसंधान परिसर, एला, ओल्ड गोवा
[3] oKkfud ¼i"Ik foKku½, गोवा के लिए भा.कृ.अनु.प. का अनुसंधान परिसर, एला, ओल्ड गोवा

| Øe lå | iztkfr dk uke | miyCèk LFkku | vkfFkZd eY; |
|---|---|---|---|
| 4. | *जी. कोवा* | असम, बंगाल, बिहार, ओडिशा तथा अंदमान के द्वीपों में | फल खाने योग्य एवं इसे जेम, मुरब्बा बनाने एवं परिरक्षक के रूप में, छाल से पीली राल वार्निश में, पत्तों को सब्जियों के रूप में उपयोग किया जाता है। छाल से पीला रंग बनता है। |
| 5. | *जी. गुम्मीगट्टा* | पश्चिमी घाट एवं नीलगिरी में | छिलके को करी में, बीजों से खाद्य वसा, पेड़ से प्राप्त पीली राल को वार्निश के रूप में उपयोग किया जाता है। फल के छिलके वात निरोधक एवं कृमिहर औषधी के रूप में भी उपयोग किए जाते हैं। |
| 6. | *जी. होमब्रोनियना* | निकोबार द्वीप | फल खाने योग्य एवं लकड़ियां गृह निर्माण एवं ठेले बनाने में उपयोग किया जाते हैं। |
| 7. | *जी. इन्डिका* | पश्चिमी घाट, कूर्ग, वायनाड, तटीय महाराष्ट्र, गोवा (कोंकण प्रदेश) | कृमिहार, रक्शोधक, कसैला, त्वचा के लिए उपयोगी तथा रोग निरोधी गुण हैं। फल के छिलके को चाशनी, रस तथा रसोई में उपयोग किया जाता है। बीज की गरी से खाद्य वसा (कोकम वसा) बनती है जो साबुन, मोमबत्ती, मरहम आदि में उपयोग किया जाता है। यह एन्थोसयानिन का स्त्रोत है जिसे प्राकृतिक खाद्य रंग के रूप में उपयोग किया जा सकता है। |
| 8. | *जी. मैंगोस्टेना* | दक्षिण भारत, निचली नीलगिरी पर्वत श्रेणी | फल खाने योग्य एवं औषधीय गुणवाले हैं। छिलके कसैले होते हैं और इसे दस्त, पेचिश आदि रोगों में उपयोग किया जाता है। त्वचा संक्रमणों में भी यह प्रभावशाली है। छाल एवं तरूण पत्तियों को पानी में उबालकर कुल्ला करने में भी उपयोग किया जाता है। |
| 9. | *जी. मोरेल्ला* | असम, खासी पर्वत श्रेणी, पश्चिमी घाट | तना से प्राप्त गमबोज एवं पीली राल वाटर कलर्स एवं धातुओं के लिए वार्निश बनाने में, रेशम वस्त्रों की रंगाई में उपयोग किया जाता है। छिलके को टैन के लिए, बीजों से प्राप्त वसा को खाना बनाने, मिष्ठान्न, मोमबत्तियां एवं दवा बननाने में उपयोग किया जाता है। |
| 11. | *जी. पिंकटोरिया* | पश्चिमी घाट | पेड़ के निःस्त्राव एक अच्छा रंग है और बीजों से तेल प्राप्त होत है। |
| 12. | *जी. स्पैकटा* | पश्चिमी घाट | छाल से रंग बनते हैं। लकड़ी सख्त किस्म की टिम्बर होती है। |
| 13. | *जी. सुक्कीफोलिया* | दक्षिण भारत | इसके लकड़ियों को टिम्बर के रूप में उपयोग किया जाता है। छाल से कम स्तर की गमबोज प्राप्त होती है। |
| 14. | *जी. ट्रावनकोरिका* | पश्चिमी घाट | गोंद, राल का उत्पादन होता है। |
| 15. | *जी. वागहट्टी* | दक्षिण भारतीय वन | गमबोज से अच्छे रंग प्राप्त होते है जो बहुत ही घुलनशील हैं। |
| 16. | *जी. एक्साथेकिमस*<br>*जी. टिंकटोरिया* | पूर्वी हिमालय, पश्चिमी घाट, अंडमान द्वीप | फल खाने योग्य एवं इससे जेम मुरब्बा बनाया जाता है। छाल एवं फल के निःस्त्राव से डाई (रंग) बनता है। अंकुर मैंगोस्टीन के लिए अच्छा रूट स्टॉक है। |

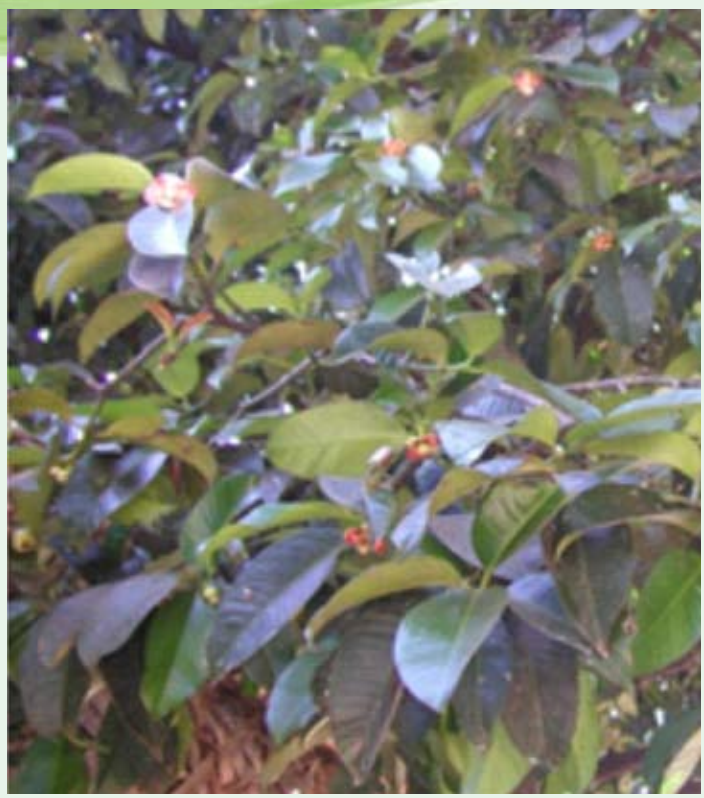

*जी. गुम्मीगट्टा*

*जी. इन्डिका* dk iM

*जी. टिंकटोरिया*

*जी. मैंगोस्टेना*

## dkde ,oa bldk xq.k

dkde

*गारसिनिया इन्डिका* को सामान्य तौर पर अंग्रेजी में ब्रिनडोनिया टैलो ट्री या कोकम बटर ट्री कहा जाता है। इसके अन्य भाषायी नाम कोकम, बिरांड, अमसोल (कोंकणी और मराठी), ब्रिंडन (गोवा में पोर्चगीज), मुरूगलु (कन्नड) और पुनरपुली (मलयालम) हैं।

कोकम का गुण सूत्र संख्या 2n = 54 (कृष्णस्वामी एवं रमन, 1949) तथा (थोम्ब्रे, 1964) 2n = 48 सूचित किया गया है।

कोकम एक सदाबहार, बारहमासी, एकाक्षिक (मोनोपोडियल) तथा ऊंचा बढ़ने वाला पेड़ है जो भारत के पश्चिमी तट, उत्तरी केरल, तटीय कर्नाटक, गोवा तथा महाराष्ट्र के कोंकण क्षेत्र में पाया जाता है। इसके अलावा कोकम अंदमान एवं निकोबार द्वीप समूह, ओडिशा तथा उत्तर–पूर्वी प्रदेश में भी (रीमा एवं कृष्णामूर्ति, 2000) पाया जाता है।

गोवा में कोकम 1200 हेक्टेयर क्षेत्र में पाया जाता है जिससे 10,200 टन उत्पादन प्राप्त होता है यानि 8.5 टन/हेक्टेयर जिसमें से रिंड 3.6 टन/हेक्टेयर, ताजे बीज 1.9 टन/हेक्टेयर, पल्प 3.0 टन/हेक्टेयर (कोरीकांतिमथ एवं देसाई, 2005) प्राप्त होता है। ये पेड़ सामान्यतः पर्वतीय ढलानों, वनों, चट्टानी पठारी क्षेत्र, रोड के किनारे, फार्म बंद या स्ट्रीम बंद आदि पर पाये जाते हैं। ये पेड़ कभी एक या दो–तीन के समूह में पश्चिमी घाट की ऊंचाईयों पर पाए जाते हैं। कोकम पेड़ प्राकृतिक रूप से अन्य वन्य या फलों जैसे करौंदा, जामुन के पेड़ों के साथ मौजूद होते हैं। इसके अलावा किसानों के खेतों में ये पेड़ लम्बे समय तक सुपाड़ी, नारियल या काजू पेड़ों के साथ मौजूद रहते हैं (अडसूल एवं अन्य लेखक 2001)।

## dkde esa izkÑfrd fofoèkrk

कोकम प्रजाती एकलिंगी है जिसमें 11 प्रकार के फूल होते हैं जिन्हें मोटे तौर पर पुंकेसरी, द्विलिंग और स्त्रीकेसरी में बांटा जा सकता है। पुंकेसरी फूलों में स्त्रीकेसर (पिस्टिल) के बिना या अल्प विकसित स्त्रीकेसर के साथ 40 से 60 पुमंग (स्टामेन) होते हैं। कुछ फूलों में 30 से 40 पुमंग के साथ 1 मि.मी. लम्बी स्त्रीकेसर होती है। इसी प्रकार जब पुमंग की संख्या घटकर 8–20 हो जाती है तो स्त्रीकेसर का आकार बढ़कर पूर्ण रूप से विकसित 6–8 कोष्ठकों के साथ 2.5–3.0 मि.मी. लम्बी हो जाती है। इस गुण से संकर परागण एवं तदुपरान्त प्राकृतिक विविधलिंगी समिष्ठयां बनती हैं। उत्पत्ति के लैंगिक पद्धति के परिणामस्वरूप पेड़ के आनुवंशिक संरचना में विजातिता (हेटेरोजिनिटी) आ जाती है। जिससे प्रत्येक पेड़ एक दूसरे से अलग होते हैं।

## dkde esa tYn Qyu oky ijkfr;ksa dk egRo

फसल की अवधि मार्च से जून तक होती है। उपज प्राप्ति के तुरन्त बाद इसके मूल्य संवर्धन के लिए फल के छिलके को सूखाया जाता है। सामान्यतः किसान उपज के बाद छिलके के टुकड़ों को धूप में सुखाते हैं। गोवा में मानसून मई अन्त से प्रारम्भ हो जाता है जिससे परिस्थिति धूप में सुखाने योग्य नहीं रह जाती हैं। पचास प्रतिशत से अधिक पेड़ों पर फल देर से लगते हैं एवं उपज मई अन्त में प्राप्त होती है। मानसून प्रारम्भ होने के बाद किसान फलों को एकत्रित करने में रूचि नहीं लेते हैं क्योंकि वे इसे सुखा नहीं पाते हैं। अतः फलों के कुल उत्पादन का 40 प्रतिशत फल मानसून के दौरान नष्ट हो जाते

हैं जो कि महान पौष्टिकता स्त्रोत का क्षति है। अतः उच्च एवं जल्द फलने वाले प्रजातियों का चयन करने या पहचान पर इस समस्या का समाधान हो सकता है।

## dkde ij vu|lèkku dk;l

गोवा राज्य में उपलब्ध कोकम की इस विशाल आनुवंशिक विविधता को वैज्ञानिक रूप से प्रलेखित नहीं किया गया है। इस प्रकार की महत्वपूर्ण आनुवंशिक विविधता शहरीकरण एवं अन्य विकास कार्यों के कारण समस्याओं से जूझ रही है। कोकम



dkde dkd.k gfVl i|tkfr

dkde u=koyh 6 i|tkfr

की सुव्यवस्थित पहचान, प्रलेखन तथा आनुवंशिक विविधता का संरक्षण समय की मांग है। रूपतामक लक्षणों एवं आणविक मार्करों की सहायता से आनुवांशिक विविधता का मूल्यांकन एवं जल्द उपज, उच्च उपज एवं गुणवत्ता देने वाले पेड़ों की पहचान का प्रयास गोवा में स्थित भा.कृ.अ.प. के परिसर में किया जा रहा है।

महराष्ट्र के कोंकण क्षेत्र में 2–3 दशक पूर्व अनुसंधान कार्य प्रारम्भ किया गया परन्तु यह कार्य सर्वेक्षण, संग्रहण, मूल्यांकन तथा उत्तम पेड़ों के चयन तक ही सीमित था। डा. बीएसकेकेवी, दापोली द्वारा दो किस्में – कोंकण अमृता एवं कोंकण हाटिस जारी किए गये। इसके अलावा साफ्ट वुड ग्राफटिंग का मानकीकरण किया गया एवं सस्योत्तर प्रबंधन, प्रसंस्करण, मूल्य संवर्धन, विपणन आदि के लिए कार्य किया गया है।

वर्तमान समय में गोवा में कोकम की प्राकृतिक विविधता पर क्रमबद्ध अध्ययन का प्रयास किया गया। सम्पूर्ण गोवा में सर्वेक्षण कर यह अध्ययन किया गया। गोवा के ग्यारह तालुकों में विस्तृत सर्वेक्षण किया गया। सर्वेक्षण के दौरान रूपतामक एवं गुणवत्त अभिलक्षणों हेतु 268 वंशक्रमों का चयन किया गया। आर.ए.पी.डी. मार्करों की सहायता से आण्विक स्तर पर इनकी



dkde dkd.k vEkRkk i|tkfr

विविधता का अध्ययन किया गया। विविधता के विश्लेषण के अलावा पहली बार भौगोलिक सूचना प्रणाली की सहायता से कोकम जननद्रव्य के वितरण का भी अध्ययन किया गया (प्रियादेवी, 2009)।

आशाजनक वंशक्रमों में जल्द उपज, फल एवं संबंधित अभिलक्षणों तथा गुणवत्ता अभिलक्षणों की पहचान की गई। विभिन्न अभिलक्षणों पर किए गए अध्ययन के आधार पर वंशक्रमों का समूह बनाया गया तथा आशाजनक समूहों का चयन प्रजनन, प्रसंस्करण आदि किया गया। इसके अलावा गोवा में कोकम जननद्रव्य के लिए जैवविविधता हॉट स्पॉट की भी पहचान की गई। इस प्रकार का गोवा में यह प्रथम कार्य है।

## Hkfo"; dh fy, egRoiw.kZ dk;Z {ks=

यद्यपि वर्तमान समय में कोकम अनुसंधान का सराहनीय वेग है, पर आगे और सर्वेक्षण कार्य से विशिष्ट वर्ग के पेड़ों की पहचान करनी है। इसके बाद मातृ पेड़ों को बड़े पैमाने पर क्लोनिंग द्वारा उत्पत्ति कर, उन्हें खेतों में एवं खेतों से परे परीक्षण कर जारी किया जाना है। इसके अलावा कोकम के मूल्य सवंर्धित उत्पादों को राष्ट्रीय एवं अंतर्राष्ट्रीय स्तर पर लोकप्रिय बनाना है।

## lanHkZ xzUFk


1 अडसुले, पी.जी, ए.आर.देसाई, एस. प्रिया देवी, एम. थंगम एवं के. रामचन्द्रुडु, 2001 गोवा में बागवानी एवं रोपण फसल की स्थिति एवं सम्भावनाएं तथा इनका उपयोग : डोना पौला में 23–24 नवम्बर 2011 में आयोजित संगोष्ठि '' कोंकण प्रदेश में कृषि उत्पाद की सस्योत्तर प्रौद्योगिकियां एवं खाद्य प्रसंस्करण उद्योग की सम्भावनाएं'' की कार्रवाई में, पृ.14–18।

2 कोरीकांतीमथ, वी.एस. एवं देसाई, ए.आर., 2005 गोवा में कोकम की स्थिति। गोवा विश्वविद्यालय में 4–5 मार्च, 2005 में आयोजित कोकम पर दूसरी राष्ट्रीय सेमिनार के काम्पेंडियम में, पृ.17।

3. कृष्ण स्वामी, एन. एवं वी.एस. रमन, 1949 ए नोट ऑन द क्रोमोसोम नम्बर ऑफ सम इकोनोमिक प्लान्टस इन इण्डिया। करेन्ट साईन्स, 18:376–378।

4. थोम्ब्रे एम.वी. 1964 स्टडीज इन *गारसिनिया इन्डिका* चोइसी। साईन्स कल्चर, 30:453–454।

5. नदकर्णी, एच.आर., क्षीरसागर, पी.जे., भगवत, एन.आर., दालवी, एम.बी. एवं पाटिल, बी.पी. 2001। आनेवाले दशक में गारसिनिया एक विशेष वंश। आर.एफ.आर.एस., वेनगुर्ला में 12–13 मई 2001 में आयोजित कोकम पर पहली राष्ट्रीय सेमिनार की कार्रवाई में, पृ.15

6. प्रिया देवी एस., 2009 कोकम *(गारसिनिया इन्डिका)* (चोइसी) थैअरस में अनुवांशिक विविधता अध्ययन। तमिलनाडु कृषि विश्वविद्यालय, कोयमबत्तौर, भारत को प्रस्तुत अप्रकाशित पी.एच.डी. थिसिस।

7. रीमा जे. एवं कृष्णामूर्ति, बी., 2000 आर्थिक महत्व की गारसिनिया प्रजातियां – वितरण एवं उपयोग। इंडियन स्पाइसेस, 37 (1) : 20–23।

# कृषि मशीनीकरण द्वारा गोवा की प्रक्षेत्र फसलों में सस्योत्तर क्षतियों का धटाव

Mk- eryk tfy;V xIrk[1] Jhefr lefr ikMjx p0gku rFkk Jhefr iue ckUndj[2]

## ifjp;

गोवा आकार की दृष्टि से भारत का लधुतम तथा जनसंख्या की दृष्टि से चौथा राज्य है। इसकी सीमाएं, उत्तर में महाराष्ट्र के सिंधदुर्ग से, पूर्व में बेलगाम तथा दक्षिण में कर्नाटक के कारवार जनपद से मिली हुई हैं तथा पश्चिम में अरब सागर तक व्याप्त हैं। इसे तटवर्ती पर्वतीय क्षेत्र के अन्तर्गत वर्गीकृत किया गया है। इस राज्य का भौगोलिक क्षेत्रफल लगभग 3,702 वर्ग कि.मी. है। शुद्ध बुवाई क्षेत्र लगभग 40 प्रतिशत तथा कृषि योग्य बंजर भूमि कृषि योग्य भूमि का लगभग 12 प्रतिशत है।

गोवा में बढ़ती हुई लागत, श्रमिकों की कमी तथा फसलों में घटती हुई उपज आदि के कारण खेती व्यवसायिक दृष्टि से कम अपनाई जाती है। कृषि का योगदान जी.एस.डी.पी. वर्ष 1970–71 में 30 प्रतिशत से वर्ष 2000–01 में 20 प्रतिशत तक पहुँच गया है। राष्ट्रीय स्तर पर भी इसमें वर्ष 1993–94 से 2001–12 तक 16.5 प्रतिशत की गिरावट आयी है। कृषि से जी.एस.डी.पी. में योगदान वर्ष 1960 में 16.5 प्रतिशत से वर्ष 2000–01 में 7 प्रतिशत हो गयी है।[2] इस क्षेत्र में गिरता श्रम भागीदारी राज्य में क्षीण होते जाने वाली कृषि संबंधी गतिविधि भी इसका प्रमाण है। इस क्षेत्र में श्रमिकों की प्रतिशतता में जहां वर्ष 1960 में 60 से 1991 में 27.5 तथा वर्ष 2001 में 16.6 प्रतिशत तक हो गया, यह जनगणना के आधार पर देखा गया। इस हाल के कारण लघु भूमि जोतों (तालिका 1) और भारी शहरीकरण हैं। कृषि संबंधी कार्यकलाप लगभग पूर्णरूप से वर्षा पर आश्रित होते हैं। मगर सिंचाई के साधन अपर्याप्त होने पर भी गोवा की उर्वर क्षेत्रों में भूमि उत्पादकता बहुत अधिक हैं।

rkfydk&1 xkok e tkrk d idkj }kjk ifjpkyukRed tkrk dh l[;k vkj {k=

| ifjpkyukRed tkrk dk vkdkj ¼g-½ | l[;k | fdlkuk dh ifr'krrk |
|---|---|---|
| 0–0.5 | 20850 | 61.12 |
| 0.5–1.0 | 6806 | 19.95 |
| 1.0–2.0 | 399 | 11.46 |
| 2.0–3.0 | 1157 | 3.39 |
| 3.0–4.0 | 482 | 1.41 |
| 4.0–5.0 | 261 | 0.77 |
| 5.0–7.5 | 280 | 0.82 |
| 7.5–10.0 | 137 | 0.40 |
| 10.0–20.0 | 168 | 0.49 |
| 20.0 से ऊपर | 62 | 0.18 |
| dy | 234 | 100 |

Jkr % lkf[;dh fun'kky;] xkok ljdkj] 2001[3]

गोवा की मुख्य फसल और मूल खाद्य फसल धान है, अन्य प्रक्षेत्र फसलें हैं – रागी, मूंगफली, लोबिया तथा प्रमुख रोपण फसलों में आम, काजू, नारियल, केला, कटहल, सुपारी, कालीमिर्च, सब्जियां, अनन्नास हैं और कन्द फसलों की खेती रोपण

[1] oKkfud (कृषि संरचना एवं पर्यावरण प्रबंधन), गोवा के लिए भा.कृ.अनु.प. का अनुसंधान परिसर, एला, ओल्ड गोवा
[2] ofj"B vulèkku Qyk, गोवा के लिए भा.कृ.अनु.प. का अनुसंधान परिसर, एला, ओल्ड गोवा

फसलों के साथ अन्तर फसलों के रूप में की जाती है। गोवा में फसलें तीन भिन्न भूमि विधियों से होती हैं जैसेकि मोरोड भूमि (मरवरल उपराऊं भूमि), मध्यवर्ती भूमि या खेर भूमि तथा कजान भूमि[5]।

विखंडित भूमि जोत तथा अगम्य व लहरदार और ढालुआं युक्त भू–भाग यंत्रीकरण के लिऐ गोवा में एक बड़ी चुनौती है। रोपण फसलों में समय पर कृषि क्रियाएं नहीं हो पाती क्योंकि दक्ष व अदक्ष दोनों प्रकार के श्रमिक नहीं मिलते, इसलिए किसान सामान्यतया कटाई–छंटाई, खाद व कीटनाशी दवाओं का छिडकाव जैसी क्रियाओं को छोड़ देते हैं, समय पर फसल–कटाई/तुड़ाई नहीं कर पाते और इस कारण अपेक्षाकृत कम उत्पादकता व फसल कटाई–तुड़ाई के दौरान भी फसल–क्षति होती है और फसलों की कटाई उपरान्त की व्यवस्था व संग्रहण के समय भी क्षति होती है। इस प्रकार कृषि उद्योग का विकास बहुत ही प्रभावित हुआ है और इससे किसान को होने वाला लाभ तेजी से क्षीण होता जा रहा है।

ऐसी स्थिति में रोपण फसलों को बनाए रखने व इनके उन्नयन के लिए यांत्रीकरण और स्वचालित मशीनीकररण के रूप में हस्तक्षेप की आवश्यकता है। गोवा में यांत्रीकरण की शुरूवात मिट्टी खोदने, उर्वरकों के प्रयोग, खरपतवार निकालने, रासायनों के छिड़काव, प्रशिक्षण व कटाई–छंटाई, संरक्षित खेती, सूक्ष्म सिंचाई, फसल–कटाई व तुड़ाई, प्रक्षालन, श्रेणीकरण, छंटाई, पेटीबन्दी करने, मूल्यवर्धन, नये उत्पाद का विकास आदि के लिए उपयुक्त उपकरणों मशीनरी के विकास/प्रदर्शन एवं प्रसार से किया जाना चाहिए।

गोवा निदेशालय ने पावर टिल्लर्स और अन्य मशीनों पर किसानों को आर्थिक सहायता प्रदान करने की पहल की है, भा. कृ.अ.प. के गोवा स्थित अनुसंधान परिसर ने भी अपने जनजातीय सह–योजना के अन्तर्गत लघु एवं सीमांत किसानो के लिए मशीनीकरण संबंधी एक कार्यक्रम शुरू किया है। गोवा के किसानो के लिए उचित मशीनीकरण के लिए प्रशिक्षण और प्रदर्शन कार्यक्रमों के माध्यम से मशीनीकरण की प्रक्रिया के लिए संवेदनशीलता उत्पन्न करने का व्यवस्थित प्रयास करने की आवश्यकता है।

rkfydk&2 xkok esa Ñf"k e'khufj;ksa dh miyC/krk

| Ek'khujh dk izdkj | Ñf"k funs'kky; ls miyC/k | vkfFkZd lgk;rk ls vkiwfrZ |
|---|---|---|
| ट्रैक्टर | 44 | 65 |
| छोटा ट्रैक्टर | | 75 |
| पावर टिलर | 04 | 1236 |
| खपतवार काटने वाली मशीन | | 2294 |
| कम्बाइन हार्वेस्टर | | 13 |

lzksr% ;kaf=d [ksrh dk;kZy;] Ñf"k funs'kky;] xkok ljdkj] 2012[3]

## lL;ksÙkj {kfr;k

सस्योत्तर क्षतियों पर गोवा केलिए भ.कृ.अनु.प. का अनुसंधान परिसर में अनुसंधान कार्य चल रहा है। किसानों के खेतों में निरीक्षण करने पर धान में सस्योत्तर क्षति संबंधी आंकड़े संकलित किए गये हैं तथा गौण आंकड़े धान की खेती करने वाले कृषकों से संकलित किए गये। अध्ययनों से पता लगा कि विविध स्तरों जैसे–फसल कटाई, दांवना, पछोडना, सुखाना, उसनना, कटाई और संग्रहण के स्तरों पर भारी क्षतियां होती हैं। हालांकि कृषि निदेशालय द्वारा किसानों को कम दरों के भाड़े पर कम्बाइन हार्वेस्टर दिए गये हैं मगर इनका उपयोग केवल समतल भूमि पर ही हो सकता है। किसानों में भारी असंतोष व्याप्त है, क्योंकि लधु भूमि वाली जोतों में फसल कटाई के दौरान इसके प्रयोग से काफी क्षति हुई है। इसके अलावा मशीनें भी समय पर उपलब्ध न हो पाने के कारण फसल अधिक परिपक्व हो जाती है और खेत में टूटकर विखर जाती है। कम्बाइन के प्रयोग करते समय ब्रोडकास्ट विधि से बुवाई करने पर भी बहुत क्षति होती है। अगम्य भूमियों में अभी भी हंसिये द्वारा हाथ से फसल–कटाई की

जाती है। लौटोलिम जैसे कजान क्षेत्रों में खेतों तक वाहनों से पहुचना भी कठिन होता है, इसलिए कटी हुए धान को सिर में लाद कर उपराऊं भूमि में लाना पड़ता है। श्रमिकों के अभाव या समय पर न मिलने पर समय पर कटाई न होने पर फसल टूटकर बिखर जाती है, जिससे भारी नुकसान होता है। इसके अलावा लम्बे समय तक वर्षा होने के कारण धान फफूंद के संक्रमण से बरबाद हो जाता है। दांवने का कार्य भी अधिकतर हाथ, कम्बाइन या बहु फसलीय थ्रेसर से किया जाता है। अनाज की सफाई हाथ से होती है तथा दानों को अलग करने के लिए प्राकृतिक हवा का प्रयोग प्रचलित है। इस विधि की कार्यक्षमता बेकार है जिससे अनाज की सफाई के दौरान बहुत अधिक क्षति होती है। धान को अक्सर सड़क के किनारे धूप में सुखाने के लिए रखा जाता है, जिससे कृन्तकों, पक्षियों और आने–जाने वाले वाहनों द्वारा एवं अकस्मात वर्षा–वृष्टि होने से बहुत नुकसान होता है। उसनन का कार्य पारम्परिक विधि से किया जाता है, जिसमें पीतल के वर्तनों का प्रयोग होता है, जिसमें धान अधिक पक जाता है और इससे कुटाई के समय क्षति हो जाती है। धान संग्रह पटसन या वुवन प्लास्टिक थैलों में कोडा और कनगियों में किया जाता है। कुछ किसान एक कमरे में धान का ढेर लगाकर सीधे ही संग्रह करते हैं। प्रमुख क्षति कृन्तकों और नाशीजीवों के कारण होती है। कुटाई के लिए पारम्परिक हलर मिल ही व्यापक रूप से इस्तेमाल होते हैं, जहां चावल ज्यादा टूट जाता है। गोवा में आधुनिक चावल मिल कम है और बारीक किस्म के चावल के लिए मिल ही नहीं उपलब्ध हैं।

## {kfr dk de dju gr| e'khuhdj.k dh lHkkouk

### c|okb|

कम्बाइन हार्वेस्टर से फसल कटाई के लिए धान की या तो उचित पंक्तियों में रोपाई या बुवाई की जानी चाहिए। हस्त चालित या अर्ध–हस्त चालित धान रोपक यंत्र तथा प्रत्यक्ष धान की ड्रम सीडर यंत्र उपयोगी यांत्रिकी है, जिनका प्रयोग पारम्परिक ब्रोडकास्ट विधि के स्थान पर हो सकता है। इन मशीनों का प्रयोग उचित प्रशिक्षण एवं संवेदनशीलता बढ़ाने के माध्यम से किया जाना है। केन्द्रीय कृषि अभियांत्रिकी संस्थान भोपाल में निम्नलिखित ड्रम सीडर और रोपाई करने वाली मशीनें उपलब्ध हैं।

प्रत्यक्ष ड्रम सीडर नर्सरी तैयार करने और रोपाई की लागत को खतम कर देता है। बुवाई के लिए बस दो मज़दूरों की ज़रूरत होती है। इसके प्रयोग से खेती की लागत ₹ 8000 प्रति एकड़ पड़ता है।

यह पावर टिल्लर चालित रोपक यंत्र है। इसका प्रयोग चटाई की तरह चावल के पौधों की रोपाई के लिए होता है। अंतर्राष्ट्रीय चावल अनुसंधान संस्थान द्वारा विकसित पैडल चालित मॉडल तथा ट्रैक्टर आरोहित डिजाइन भी उपलब्ध हैं।

### Qly dVkb|

फसल की उचित समय पर कटाई के लिए और ज्यादा कम्बाइन उपलब्ध कराये जाने की आवश्यकता है तथा लघु और सीमान्त किसानो को लधु भूमि जोतों में उपयुक्त फसल–कटाई के लिए तमिलनाडु कृषि अनुसांधान विश्वविद्यालय के मिनी मॉडल कम दरों पर उपलब्ध कराये जाने चाहिए। लेकिन दब–दबे कजान जोतों के लिए ट्रैक टाइप कम्बाइन ज्यादा उचित होंगे।

मिनी कंबाइन एक स्वचलित उपकरण है जो फसल–कटाई के संयोजित कार्यों को करने हेतु होता है जैसे– फसल कटाई दांवना, पछोडना। इस उपकरण का मूल्य लगभग 3 लाख रूपये है तथा यह टी.एन.ए.यू. (तमिलनाडु कृषि विश्वविद्यालय) के कृषि अभियांत्रिकी महाविद्यालय में उपलब्ध है। लेकिन इसके रबड़ पहियों के बदले में ट्रैक टाइप चेन लगाना जरूरी है ताकि गोवा के दलदली एवं चिकनी खेतों में इनका इस्तेमाल आसानी से हो।

## eMkbl ¼nkouk½

गोवा के ज्यादातर खेतों में मड़ाई हस्तगत या पैरों से और ट्रैक्टर/पॉवर टिल्लर के पहियों से की जाती है। कुछ स्थानों पर बहु–फसली थ्रेसर भी प्रयोग किए जाते हैं। पावर टिल्लर आरोहित धान की फसल के थ्रेसर और बहु–फसली थ्रेसरों की व्यवस्था से किसानों की सहायता हो सकती है और इससे श्रमिकों की आवश्यकता भी कम होगी और उनका कृषि कार्य भी समय पर पूरा हो जाएगा।

धान की फसल की मड़ाई के लिए धान का थ्रेसर, इसकी 250 कि.ग्रा. अनाज प्रति घंटा की क्षमता तथा ₹ 20000/– की लागत है। यह के.कृ.अभि.सं. भोपाल के पास उपलब्ध है।

बहु–फसली थ्रेशर का प्रयोग धान, रागी, ज्वार, मक्का सूर्यमुखी, गेहूं, सरसों की मड़ाई के लिए होता है। इसका प्रयोग लोबिया तथा दलहानों के लिए भी हो सकता है। इसकी क्षमता 600–1000 कि.ग्रा. प्रति घंटा की होती है तथा व्यवसायिक रूप से ₹ 80,000/– में उपलब्ध है।

## iNkMu

पैडल या साईकलिंग टाइप/पावर टिल्लर चालित पछोडने वाले पंखों से मड़ाई के बाद आनाज को साफ करने की क्षमता में सुधार आ सकता है। यांत्रिक पछोड़क भी भोपाल में स्थित के.कृ.अभि.सं. और टी.एन.ए.यू. कोयम्बटूर के पास व्यापारिक रूप से उपलब्ध हैं।

मड़ाई के बाद सभी अनाजों को पछोड़ने व सफाई के लिए यांत्रिक पछोड़क मशीन उपयोगी होती है, इसकी क्षमता 500–750 कि. ग्राम प्रति घंटा तथा मूल्य लगभग ₹ 20,000/– है तथा प्रचालन की लागत ₹ 25/– प्रति घंटा है। इसकी सफाईदर लगभग 97 प्रतिशत होती है।

## 'k"du

गोवा एक ऐसा राज्य है जहां वर्षा फसल कटाई के समय तक भी होती रहती है। इसलिए फसलों को सुखाने के लिए धूप पर निर्भर रहने से बहुत अधिक क्षति हो जाती है। कृषि अपशिष्ट से जलाई जाने वाली आग से चालित यांत्रिक शुष्कक यंत्रों और ग्रीनहाउस प्रकार के सौर शुष्ककों के प्रयोग से अधिकांश फसलों को तेजी से सुखाया जा सकता है और फफूंद आदि के कारण होने वाली क्षति को रोका जा सकता है। फफूंद लगना इस क्षेत्र में अधिक नमी के कारण बहुत आम बात है।

कृषि अपशिष्टों से जलने वाली आग से चालित फसल शुष्कक के प्रयोग से अधिकांश फसलों को बिन में सुखाया जा सकता है तथा इस प्रकार फसल की क्षति कम होती है, कृषि अपशिष्ट का प्रयोग आग जलाने हेतु होता है और इससे गर्म हवा उत्पन्न की जाती है, इसकी लागत ₹ 1,50,000/– तथा प्रचालन संबंधी लागत ₹ 20/– प्रति घंटा होती है। इसकी क्षमता 1 टन प्रतिदिन होती है।

ग्रीनहाउस रूपी सौर–शुष्कक का प्रयोग अधिकांष प्रक्षेत्र फसलों के लिए किया जाता है तथा वर्षा होने की स्थितियों में भी यह संभव है। ग्रीनहाउस प्रकार सौर शुष्कक में हवा के आवागमन हेतु पंखे और जस्तीकृत लौह पाइप (कोण) के बने रैक और ट्रे लगी होती है। 20 वर्ग मी. शुष्कक की लागत लगभग ₹ 60,000/– होती है।

## èkku&mlluu

उसनन के दौरान और उसके बाद कुटाई के दौरान अनाज की क्षति को आधुनिक उससन यूनिटों के प्रयोग से कम किया जा सकता है। ये यूनिटें सी.एफ.टी.आर.आई, मैसूर, टी.एन.ए.यू. कोयम्बटूर तथा सी.आर.आर.आई. कट्टक द्वारा उपलब्ध कराए जा सकते हैं।

घरेलू उसनन यूनिट से समरूप उसनन हो सकता है तथा इससे साबूत चावल सुरक्षित रहता है। इसकी क्षमता 125 कि.ग्रा. प्रति बैच होती है और प्रथम बैच में लगभग 45 मिनट का समय लगता है। उसके बाद की प्रकिया 25 मिनट की होती है। इस यूनिट का मूल्य ₹ 2,500 तथा प्रचालन लागत ₹ 7 प्रति घंटा तक आती है। जब प्रचालन न हो रहा हो तब इसका प्रयोग भंडारण के बर्तन के रूप में भी किया जा सकता है।

## HkaMkj.k

फार्म पर भंडारण के लिए 250–500 कि.ग्राम की क्षमता वाले जस्सीकृत लौह/इस्पात के बिनों की व्यवस्था करने से भंडारण में अनाजों की क्षति कम करने में सहायता मिलेगी। इससे सार–संभाल और लाने–ले जाने में भी सुविधा रहेगी।

# pkoy feyksa dk vkèkqfudhdj.k

गोवा में चावल की कुटाई छोटे और मध्यम आकार के हलरों में होती है। गोवा की ज्यादातर मिल हलर मिलें हैं और गिने–चुने मिलों में ही शेल्लर पॉलिषर अलग होते हैं। इन हलर मिलों का लाभ यह है कि ये सस्ती पड़ती हैं और प्रचालन के लिए साधारण होती हैं। किन्तु धान–चावल में परिवर्तित करने में इन मिलों की कार्यक्षमता बहुत कम होती है। इसमें साबुत चावलः 60–68 प्रतिशत साबुत तथा 10–25 प्रतिशत टूटा हुआ चावल मिलता है, जबकि आधुनिक प्रकार की मिलों में 68–72 प्रतिशत साबूत और 5–7 प्रतिशत टूटा हुआ चावल प्राप्त होता है। गोवा के किसानों को धान की उन्नत किस्में दी गयी हैं। किन्तु पुरानी हलर मिलों में उन्हें साबूत चावल बहुत कम प्राप्त हो पाता है। इसलिए गोवा में आधुनिक चावल मिल की शुरूआत उन्नत संकर किस्मों के चावल के लिए बहुत आवश्यक है। यह उल्लेखनीय है कि आधुनिक मिलों से साबुत चावल अधिकतम प्राप्त होता है और टूटे डुए चावल बहुत कम होते हैं तथा उपोत्पाद की गुणवत्ता बेहत्तर होती है क्योंकि इनमें रबर रोल शेलर मौजूद होते हैं। सामान्यतया हलर मिलों से चावल के चोकर में सबसे कम तेल मिलता है क्योंकि उसके साथ भूसी और टूटा चावल भी होता है। मगर इस सन्दर्भ में शेलर और आधुनिक मिलों से प्राप्त चोकर में तेल तत्व कहीं अधिक होता है। लघु आधुनिक चावल की मिलें व्यावसायिक रूप से उपलब्ध हैं और गोवा में ग्रामीण स्तर पर इनको स्थापित किया जा सकता है, जिससे साबूत चावल की मात्रा में सुधार आ सके। 500 कि.ग्रा. प्रति घंटा क्षमता वाले आधुनिक छोटे चावल मिलों की लागत 6–15 लाख के अन्तरगत हैं।

## fu"d"k

गोवा में लम्बी अवधि तक बार–बार वर्षा होने, श्रमिकों के न मिलने, अनुपयुक्त फसल–कटाई व सस्योत्तर सार संभल, प्रसंस्करण तथा भंडारण यांत्रिकी के अभाव के कारण वर्तमान समय में सस्योत्तर क्षतियां बहुत अधिक हो रही हैं। हालांकि कृषि

निदेशालय द्वारा पावर टिलर और कम्बाइनों को उपलब्ध करवा कर मशीनीकरण की पहल की गयी है, फिर भी किसानों को उचित बुवाई और रोपाई तथा छोटे पावर टिल्लरों से चालित सस्योत्तर सार–संभाल वाले उपकरणों के प्रयोग करने का प्रशिक्षण दिये जाने से सस्योत्तर क्षतियों को कम किया जा सकता है। इस प्रकार राष्ट्रीय धन की बचत होगी और किसानों को अपनी उपज से बेहत्तर अर्जन हो सकेगा। इस आलेख के अन्तर्गत सस्योत्तर क्षतियों को कम करने के लिए समय पर फसल–कटाई, सार–संभाल और प्रसंस्करण हेतु प्रक्षेत्र फसलों के मशीनीकरण की संभावना का संक्षिप्त परिचय दिया गया है।

## l UnHk


1. नेचुरल रिसोर्स एकाउंटिंग ऑफ गोवा स्टेट–2008, प्रोजक्ट रिपोर्ट, फेज–।। आई.आर.ए.डे.।
2. http:/www.censusindia.net/ 10 अगस्त 2012 को देखा गया
3. मजूनाथ, बी.एल. 2012, मकैनाइजेशन ऑफ ऐग्रिकल्चर इन गोवाः करेंट स्टेटस, फ्यूचर स्कोप ऐंड कॉस्ट्रैंटस । इन टेक्नोलौजी इनवेंटरी ऑन ऐग्रिकल्चरल मकेनाइजेशन फॉर गोवा। सम्पादकरू गुप्ता; एम.जे., तंगम, एम., प्रिया देवी, एस. तथा सिंह, एन.पी., ऐग्रीकल्चरल मकेनाइजेशन फॉर स्मौल ऐंड मार्जिनल फार्मर्स ऑफ गोवा पर कार्यशाला व प्रदर्षनी में प्रकाशित, 11–12 सितम्बर, 2012, गोवा।
4. http://www.agri.goa.gov.in/crops/ 10 सितम्बर 2012 को देखा गया
5. कोरीकांथीमठ, बी.एस., मंजूनाथ, बी.एल. तथा मनोहरा, के.के. स्टैटस पेपर ऑन राइस इन गोवा ऐक्सस्ड ऐट http://www.rkmp.co.in/sites/default/files/ris/rice-state-wise/Status%20onRice%20in%20Goa.pdf
6. जे. के. अन्नामलाई, 2006, लौंग टर्म स्ट्रेटजीज ऐंड प्रोग्राम्स फॉर मकेनाइजेशन आफ ऐग्रीकल्चर इन ऐग्रो कलाइमेट जोन–XII वेस्टर्न प्लेन्स ऐंड घाट रीजन्स, स्टैटस ऑफ मकेनाइजेशन इन इंडिया, फौर्मुलेटिंग लौंग टर्म मकेनाइजेशन स्ट्रेटजीस फॉर ईच ऐग्रो क्लाइमेट जोन/स्टेट इन इंडिया से सम्बन्धित परियोजना रिपोर्ट, पृष्ठ 220–238, आई.ए.एस.आर.आई., नई दिल्ली–110012।
7. ए. आलम, 2006 फ्यूचर रिक्वायरमेंट ऑफ ऐग्रिकल्चरल मशीन्स फॉर मकेनाइजिंग ऐग्रीकल्चर इन स्टेटस ऑफ फार्म मकेनाइजेशन इन इंडिया, तकनीकी रिपोर्ट, पृष्ठ 175–196 आई.ए.आर.आई., नई दिल्ली–110012
8. नायक, पी. 1996, प्रोब्लम्स ऐंड प्रौस्पेक्टस ऑफ राइस मिल मॉडनाईजेशन, असम विश्वविद्यालय की पत्रिका, वौत्र–1, सं–1, पृष्ठ 22–28 ।

# काजू के बागानों में गेंदा पुष्प की अंतर–फसल – एक लाभदायक उद्यम

Mk- lQhuk ,l-,-[1] Mk- ,l- fi;k nsoh[2] Mk- ,e- Fkxe[3]

गेंदा पुष्प की खेती फार्म में शुद्ध फसल, सीमित फसल अथवा अंतर फसल के रूप में की जा सकती है। इसके अलावा इसकी उत्पादन रोपण फसलों के रूप में और वानिकी क्षेत्रों में भी संभव है। गोवा में खेती योग्य भूमि सीमित होने के कारण यहां पर इन फसलों को खाद्य फसलों, रोपण फसलों और व्यवसायिक फसलों के साथ जहां भी संभव हो खेती करने की आवश्यकता है। गोवा की प्रमुख रोपण फसलों में सुपारी और काजू प्रमुख हैं। इसलिए नारियल, सुपारी और काजू के बागानों में गेंदा जैसे पारंपरिक फूलों को अंतर फसल के रूप में उपजाने की बड़ी संभावनाएँ हैं। गेंदा पुष्प उत्पादन का क्षेत्र और उत्पादन बढ़ाने के लिए यही एक उपाय है जिससे कृषको को आत्मनिर्भरता प्राप्त हो सकती है। इस उद्देश्य के साथ काजू के बागानों में गेंदा पुष्प की अंतर फसल के रूप में उगाने हेतु स्थानीय प्रविष्टियों संबंधी खेती क्रियाओं के पैकेज का मानक निर्धारित करने के लिए प्रयास किया गया।

गेंदा पुष्प की खेती बहुत आसान है। यह कम समय में तैयार हो जाती है। इस फूल की व्यापक मांग है, आकर्षक रंग और आकार होता है। इसको लंबे समय तक मुरझाये बिना रखा जा सकता है इसलिए किसानों और पुष्प विक्रेताओं में यह बहुत लोकप्रिय है। पुष्प–हार बनाने के लिए गेंदा का फूल बहुत सुविधाजनक होता है और इसका बड़ा महत्व है। गणेश चतुर्थी, दशहरा और दीपावली जैसे त्यौहारों पर इसकी गोवा में बहुत अधिक मांग होती है। गेंदा पुष्प के दो प्रजातियां होती हैं – अफ्रीकन गेंदा *(टैगेट्स इरेक्टा)* और फ्रांसिसी गेंदा *(टैगेट्स पैटुला)*। इस फसल को उगाने के लिए बीजों का प्रयोग किया जाता है। 75 से.मी. चौड़ी क्यारियों वाली पौधशाला तैयार करना चाहिए। इसे 10–20 से.मी. ऊंचाई पर पौधे उगाने के लिए सुविधाजनक लंबाई भी होनी चाहिए। गोबर की खाद को मिट्टी पर्याप्त मात्रा में भली–भांति मिलाना चाहिए। बीजों की बुआई 5 सेमी. कतारों में करें। बुआई 2–3 से.मी. से ज्यादा गहरी नहीं होनी चाहिए। बीजों को बढ़िया बालू के साथ मिला दें और फव्वारे से सिंचाई कर दें। पौधशाला को धान के पुआल से ढक दें। प्रारंभ में एक दिन छोड़कर सिंचाई करना चाहिए। चार–पांच दिन के भीतर पौधे उग आते हैं। बुआई के एक महीने के बाद पौधे रोपाई के लिए तैयार हो जाते हैं।

चार सप्ताह के गेंदा पुष्प के पौधों को काजू के बागानों में काजू वृक्षों के बीच में कुछ अंतर से लगा दें जो बाद में परिपक्व होने पर 75–90 से.मी. लंबाई तक पहुंच जाएगा। गेंदा पुष्प के पौधों को काजू वृक्षों से हटकर बीच के स्थान में दो कतारों में लगाना चाहिए और यह अंतर लगभग 60 से.मी. तक का रखा जाना है।। काजू के वृक्षों की दो कतारों के बीच इस प्रकार 4 वर्ग मीटर के अंतर पर गेंदा पुष्प के पौधों की चार कतारें लगाई जा सकती हैं। गेंदा पुष्प के पौधों के बीच 45 से.मी. का अंतराल होना चाहिए।

गेंदा पुष्प के पौधों की बेहतर वृद्धि और विकास के लिए, एनःपीःके का प्रयोग 250:100:100 कि.ग्रा. प्रति हेक्टेयर के हिसाब से प्रयोग संस्तुत किया जाता है। नत्रजन का प्रयोग पौध रोपण के दौरान 125 कि.ग्रा. प्रति हेक्टेयर के हिसाब से दो मात्राओं में किया जाना चाहिए और पौध रोपण के एक महीने के बाद पौधों के ऊपर नत्रजन का छिड़काव देना चाहिए। पौधों के ऊपर नत्रजन के छिड़काव के बाद मिट्टी की गुडाई की जाए। पौध रोपण के 30–45 दिन बाद या कली निकलने से पहले पौधे के ऊपर के हिस्से की थोड़ी छंटाई कर दी जाए। इससे पुष्प उपज में काफी वृद्धि देखी गई। फूल जब पूरी तरह खिल जाता है

[1] oKkfud (पुष्प विज्ञान), गोवा के लिए भा.कृ.अनु.प. का अनुसंधान परिसर, एला, ओल्ड गोवा
[2] 0kfj"B oKkfud (फल विज्ञान), गोवा के लिए भा.कृ.अनु.प. का अनुसंधान परिसर, एला, ओल्ड गोवा
[3] 0kfj"B oKkfud (बागवानी), गोवा के लिए भा.कृ.अनु.प. का अनुसंधान परिसर, एला, ओल्ड गोवा

तभी तोड़ना चाहिए और तुड़ाई सूर्योदय से पहले या शाम को, जब अधिक गर्मी न हो तब करनी चाहिए। पुष्प तुड़ाई से पहले खेत की सिंचाई कर दें ताकि फूल लंबे समय तक मुरझाए बिना रह सकें।

## xsnk iq"i dh [ksrh lcaèkh iokg js[kkfp=

पौधशाला क्यारियों में पौधे उगाना

↓

काजू बागानों में 4 वर्ग मीटर वृक्षों के अंतर पर उनके बीच 2 कतारों में एक महीने के पौधों को कतारों में रोपित करना

↓

पौधों के बीच का अंतराल (60 x 45 से.मी.)

↓

एन:पी:के (250:100:100 प्रति हेक्टेयर) गोबर की खाद 15 टन प्रति हेक्टेयर

↓

सिंचाई (शुष्क अवधि में 4–5 दिन में एक बार)

↓

खरपतवार निकालना

↓

पौधरोपण के 40 दिन बाद छंटाई

↓

पुष्प तुड़ाई

↓

(3 दिन में एक बार पुष्पों को डंठल सहित तोड़ना चाहिए)

↓

कई स्थानों पर पुष्प तुड़ाई से पता लगा कि एक मौसम में पैदावार लगभग 80 कुंतल प्रति हेक्टेयर हुई है।

काजू में प्रारंभिक निषेचन अवधि 3–4 वर्ष तक की होती है। इस अवधि में गेंदा पुष्प की खेती कारगर रूप से बीच के खाली स्थान में की जा सकती है, ताकि प्रारंभिक अवधि के दौरान यह अच्छी आय का साधन हो सकता है। गोवा में काजू बागानों में अंतर फसल के रूप में गेंदा पुष्प की वार्षिक खेती के संबंध में सूचना उपलब्ध नहीं है। इस दृष्टि से काजू की खेती करने वाले किसानों के लिए इस अंतर फसल संबंधी अध्ययन का विशेष व्यवहारिक महत्व होगा। अध्ययन से पता लगा कि काजू के बागानों में गेंदा पुष्प की अंतर फसल वृक्षों के खलन फलन के दौरान और फलन न होने के दौरान अधिक लाभकारी होती है।

काजू आधारित फसल प्रणाली के अंतर्गत मौजूदा बारहमासी फसल के रूप में गेंदा पुष्प की समेकित खेती से किसानों की आय में लगातार वृद्धि होती है। इसलिए काजू की खेती की उत्पादकता और लाभकारिता में सुधार लाने के लिए गेंदा पुष्प की अंतर फसल की संस्तुति की जाती है।

dkt w d s ckxkuksa esa xsnk iq"i dh varj&Qly

# काजू में तना और जड़ बेधक कीटों का समेकित नाशीजीव प्रबंधन

Mk- e#Fkknjb[1]

काजू का तना और जड़ बेधक कीट, *प्लोकेडेरस फेरूगिनेअस* एल. अत्यंत हानिकारक कीट है, क्योंकि इसके द्वारा की गयी क्षति से वृक्ष मर जाता है। यह आंतरिक ऊत्तकों को बेधकर, विभिन्न अवधियों में 40 प्रतिशत तक हानि पहुंचाकर वृक्ष पर इतनी बुरी तरह से आक्रमण करता है कि वृक्ष 2 वर्ष के भीतर ही मर जाते हैं, इसके फलस्वरूप वृक्षों की लगातार भारी क्षति हो जाती है। जिन पौधों की उचित देखभाल नहीं होती, उन पर इस कीट का अधिक आक्रमण होता है। काजू के वृक्षों के तना बेधक कीटों की दो अन्य प्रजातियां हैं, जैसे *पी. ओबेसस* गहान और *बैटोसेरा रूफोमैकुलेटा* जो वृक्षों को क्षति पहुंचाते हैं।

## {kfr d; y{k.k

- तना बेधक कीट के संक्रमण की पहचान वृक्ष के कॉलर वाले हिस्से पर छोटे–छोटे छेदों से हो जाता है
- वृक्ष के भूमि के सतह वाले हिस्से में बनाए गये छेदों से फ्रास (खुरदरा धूल पाउडर जैसा) निकलता है
- काजू के वृक्ष के मुख्य तने के निचले हिस्से पर गोंद का रिसाव होता है
- सूंडी कीट वृक्ष की छाल के भीतर छेदों में अंडे देती हैं और वृक्ष के भीतरी हिस्से और ऊत्तकों को खा जाती हैं।
- वृक्ष के तने और जड़ों में बहुत बड़ी सुरंग सी बन जाती है और भीतरी ऊत्तक भी अनियमित रूप से सुरंगित या छिद्रित होते हैं

Ýk l dk fudyuk

xEekfl l

[1] oKkfud (कीट विज्ञान), गोवा के लिए भा.कृ.अनु.प. का अनुसंधान परिसर, एला, ओल्ड गोवा

- इस क्षति के परिणाम स्वरूप पानी और पोषक तत्वों की आपूर्ति बाधित हो जाती है, जिससे पत्ते पीले पड़ने लगते हैं और गिर जाते हैं तथा अन्त में वृक्ष ही सूखकर समाप्त हो जाता है।
- यदि मूल आधार जड़ों को अधिक क्षति पहुंचती है तो मूल आधार क्षतिग्रस्त होने के कारण प्रभावित वृक्ष एक ओर झुक जाता है।

## thou pØ

- बेधक कीट की एक वर्ष में एक पीढ़ी होती है। वयस्क कीट मध्यम आकार (25–40 मि.मी. लम्बा) का होता है, तथा इसकी लाल भूरी लंबी सी सूंड होती है। मादा कीट 60–90 अंडे देती है। ये अक्सर पुराने वृक्षों (4–5 वर्ष पुराने) पर अंडे देती हैं जिसकी छाल खुरदरी होती है, जिसमें ज्यादा दरारें पड़ी होती हैं। इसके अलावा उन वृक्षों पर जो पिछले मौसम में तना बेधक द्वारा क्षतिग्रस्त किए गये हों, या अधिक कटाई–छंटाई वाले वृक्षों पर जो शारिरिक रूप से कटे हुए होते हैं उन पर भी अंडे देती है।
- ये मादा कीट वृक्ष के तने की ढीली छाल की छोटी–छोटी दरारों में स्थित सजीव ऊत्तकों में या मिट्टी के ऊपर जड़ के बाहर निकले हुए हिस्से में अंडे देती हैं। इनके अंडे सफेद, आकार में चपटे लगभग 3 मि.मि. लम्बाई वाले (चावल के दानों की तरह) होते हैं। अंडे की अवधि 4–7 दिन की होती है।
- तना और जड़ बेधक कीट मुख्य रूप से भूमि से 100 से.मी. ऊपर वृक्ष के मुख्य तने पर आक्रमण करते हैं।

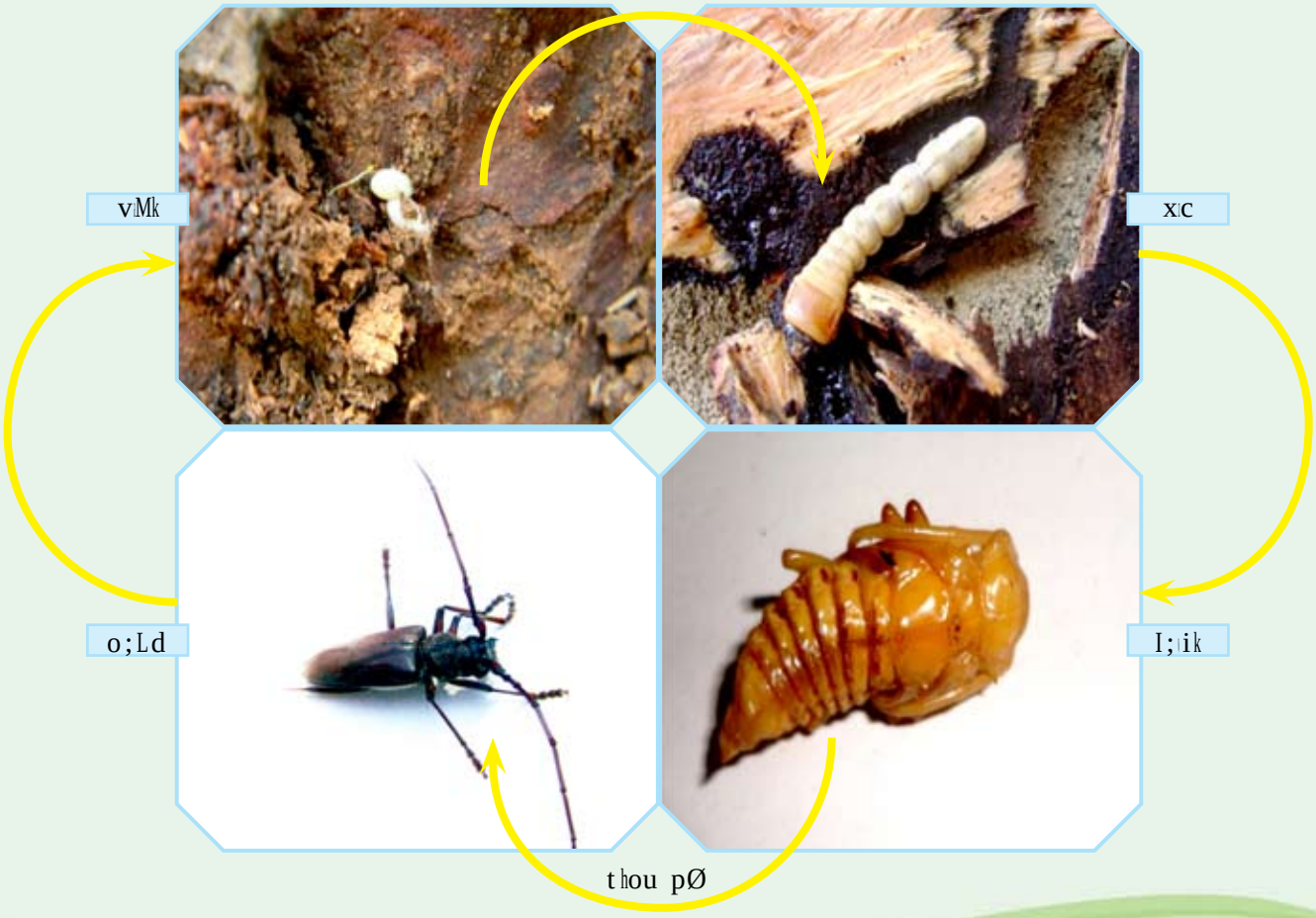

## i:cèku

### d½ jkx&fujkèkh i:cèku

- जिस बाग में काजू के पौधे लगाए गये हों, उनके बीच खाली स्थान की गुड़ाई–निराई करके सफाई करते रहना चाहिए, किन्तु ध्यान रखा जाए कि पौधों की जड़ों को किसी प्रकार क्षति न पहुंचे।
- बाग में कार्य करते समय हंसिया या किसी अन्य औजार से पौधों को क्षति न पहुंचाएं, अन्यथा वयस्क कीटों को क्षतिग्रस्त स्थान पर अंडे देने का अवसर मिल जाएगा।
- वृक्ष के मुख्य तने के आधार के आस–पास देखते रहें कि कहीं वृक्ष के तने का भुरभुरा धूल/चूर्ण तो नहीं निकलता है।
- कीट के लगने की प्रारंभिक अवस्था में अपरिपक्व कीटों को यांत्रिक रूप से हटा दें।
- वानस्पतिक स्वच्छता के उपायों को अपनाकर मृत वृक्ष–पौधों को कम से कम 6 महीने में एक बार हटा देने से तना व जड़ बेधक कीटों का फैलाव कम हो सकता है।
- वृक्ष के मूल तने में 2 मी. की ऊचाई तक कीट–अंडों को कठोर नारियल ब्रुश से हटाकर साफ करते रहें।
- रोग–निरोधक उपचार के अन्तर्गत यह भी है कि वृक्ष के मूल तने पर भूमि से एक मीटर की ऊंचाई तक 0.2 प्रतिशत की दर से 4 ग्राम एक लीटर पानी में घेलकर कार्बेरिल 50 डब्लू. पी. फोहा बनाकर रख दें अथवा वर्ष में दो बार यानी मार्च–अप्रैल और नवम्बर–दिसम्बर में कोलतार और मिट्टी तेल (1:2) के साथ वृक्ष के तने पर पोत दें। इससे वयस्क कीटों द्वारा अंडे देना बन्द हो जाता है।

### [k½ mipkjh i:cèku

- वृक्ष के कीटग्रस्त भाग में भूमि से एक मीटर की ऊंचाई तक क्लोरोपाइरिफॉस 10 मि.ली. की दर से एक लीटर पानी में मिलाकर छिड़क दें।
- बेधक कीट द्वारा क्षतिग्रस्त वृक्षों में इसकी प्रारंभिक अवस्था में मोनाक्रोटोफॉस 36 डब्लू. एस. सी. 30 मि.ली. की दर से रूई में फोहा को बन्द करके वृक्ष के तने के कीटग्रस्त भाग में रखकर ढक देने से काफी लाभ देखा गया।
- क्लोरपाइरिफोस 10 मि.ली. एक लीटर पानी में मिलाकर वृक्ष के तने के चारों ओर की मिट्टी में डाल कर सराबोर करने से भी उपचार हो जाता है अथवा कार्बेरिल 50 डब्लू. पी. 0.2 प्रतिशत की दर से 4 ग्राम प्रति लीटर पानी में घोल बनाकर मिट्टी को सराबोर कर लें।
- वृक्ष के कॉलर/भूमि सतह वाला हिस्से में 1 मी. की ऊंचाई तक और कीट ग्रस्त जड़ों में 5 प्रतिशत नीम का तेल (50 मि.ली. नीम का तेल + एक ली. पानी + 0.5 मि.ली. टीपौल) डाल दिया जाय।
- वृक्ष के तने के चारों ओर मिट्टी में 75 ग्राम सेविडोल (4 ग्राम) के प्रयोग से भी तना व जड़ बेधक कीट का प्रकोप कम हो जाता है।

# जूट श्रेणीकरण की कम्प्यूटरीकृत प्रणाली

Jh lqt; nkl[1] ,oa Jh d- ,y- vfgjokj[2]

## lkjka'k

सभी भली भांति जानते हैं कि जूट हमारे दैनिक जीवन में महत्वपूर्ण भूमिका निभाता है। जूट का स्थान कपास के बाद आता है जोकि अति महत्वपूर्ण रेशा वाली फसल है। सामान्यतया, *कारकोरस कैप्सुलरिस* को सफेद जूट अथवा ''तीता'' पाट और *कारकोरस ऑलीटोरियस* को तोसा जूट अथवा ''मीठा'' पाट के रूप में जाना जाता है। मूलतः जूट नकदी फसल है और भारत के पूर्वी भाग में जूट की भूमिका आर्थिक दृष्टिकोण से महत्वपूर्ण है क्योंकि भारत जूट एवं इसके उत्पादों से 1450 करोड़ रूपये का विदेशी विनिमय अर्जन करता है। लगभग 40 लाख किसान परिवार जूट की खेती पर आश्रित है। इनके अलावा 20 लाख व्यक्ति ऐसे है जो कम या अधिक इस व्यापार में प्रत्यक्ष अथवा अप्रत्यक्ष रूप से जुड़े हुए है।

## ifjp;

जूट का पैंकिग की दुनिया में वर्षों से महत्वपूर्ण स्थान है क्योंकि ये सस्ता, टिकाऊ एवं जैव निम्नीकरणीय गुणों से परिपूर्ण है। मुख्यरूप से जूट की खेती पश्चिम बंगाल, पूर्वी बिहार, असम, ओडिशा और मेघालय में सीमित स्थानों पर होती है। इनमें से पश्चिम बंगाल, बिहार और असम भारत के कुल उत्पादन का लगभग 80 प्रतिशत योगदान करते हैं। किन्तु जूट, सिंथेटिक रेशों से चुनौतियों का सामाना कर रहा है। फिर भी कच्चे जूट की गुणवत्ता को बनाए रखकर उत्पादों के विविधीकरण के माध्यम से ऐसी हानियों का निवारण किया जा सकता है। रेशा जो बारीक सूत कातने लायक होता हैं वह अति उत्तम समझा जाता है। अवर्गीकृत जूट रेशा के भौतिक गुणधर्मों के आधार पर रेशीय गुणवत्ता की वर्गीकरण प्रक्रिया जूट श्रेणीकरण कहलाती है। यह विभिन्न ग्रेडों अथवा वर्गों के उपविभाग करने के दृष्टिकोण से रेशा के स्वाभाविक भौतिक गुणधर्मों पर आधारित निश्चित पैरामीटरों की प्रतिपादन प्रक्रिया है। जूट गुणवत्ता से ही जूट रेशा के अत्यन्त उपयोग निर्धारित होते हैं। जूट उत्पादों के विविधीकरण हेतु सर्वश्रेष्ठ तथा बारीक गुण वाले रेशा की आपूर्ति सुनिश्चित की जाती है। इसलिए वर्तमान समय में जूट रेशा की गुणवत्ता उन्नत करना अत्यधिक महत्वपूर्ण समझा गया है।

वर्तमान समय में बी.एस.आई. ने उपरिवर्णित दोषपूर्ण प्रक्रियाविधि (पूर्व नाम आइ.एस.आइ.) को हटाने के लिए छः भौतिक मानकों अर्थात् मजबूती, बारीकी, रंग, मूलांश, अवदोष और घनत्व पर आधारित आठ ग्रेडों वाली श्रेणीकरण प्राणली प्रारंभ की है। इन लक्षणों मे महत्वानुसार प्रत्येक लक्षण हेतु विभिन्न स्कोर मार्कस तय किए जाते हैं। फिर भी विभिन्न लक्षणों के स्कोर मार्कस, लक्षण श्रेणीकरण अनुसार एक ग्रेड से दूसरी ग्रेडों में परिवर्तित रूप में पाए जाते हैं। यह श्रेणीकरण प्रणाली जूट उत्पादकों के लिए बहुत ही वैज्ञानिक एवं उपयोगी पायी गयी है। इस नवीन श्रेणीकरण प्रणाली को आरंभ करने के लिए पूर्वकाल में पटसन प्रौद्योगिकी अनुसंधान प्रयोगशाला (जे.टी.आर.एल.) के नाम से सुविख्यात राष्ट्रीय पटसन एवं समवर्गी रेशा प्रौद्योगिकी अनसुंधान संस्थान, कोलकाता (निरजैफ्ट) की अग्रणी भूमिका है। श्रेणीकरण में सहायक यंत्रों और हस्त चक्षु विधि का उपयोग करके कोई भी व्यक्ति जूट रेशा की ग्रेडों का निर्धारण आसानपूर्वक कर सकता है। बी.आई.एस. श्रेणीकरण प्रणाली का चतुर्थ संस्करण दिसंबर 2003 से प्रारम्भ हुआ था। वर्तमान परिदृश्य पर विचार करते हुए इस संस्करण में विभिन्न लक्षणों के लिए अलग–अलग स्कोर मार्कस निर्धारित किए जाते हैं। भारतीण प्रणामन ब्यूरो (बी.आई.एस.), जूट मिल्स एसोसिएशन, विभिन्न जूट संगठनों तथा किसानों ने एक सुर में इस प्रणाली का समर्थन किया है। वर्तमान में जूट रेशा की ग्रेड करने वाली यह अति महत्वपूर्ण प्रणाली है।

[1]oKkfud] राष्ट्रीय पटसन एवं संवर्गी रेशा प्रौद्योगिकी अनुसंधान संस्थान, कोलकाता
[2]Rkduhfd vf/kdkjh] राष्ट्रीय पटसन एवं संवर्गी रेशा प्रौद्योगिकी अनुसंधान संस्थान, कोलकाता

रेशों के परिवर्ती गुण पर अनेक कारकों का प्रभाव पड़ता है। जिसमें मिट्टी, जलवायु और गलाने वाले जल का परिमाण एवं गुण अनियंत्रित कारक हैं जबकि किस्में, खेती करने की पद्धतियाँ, गलाने की विधि और रेशा निष्करण इत्यादि नियंत्रणीय कारकों के रूप में जाने जाते हैं। फिर भी मिट्टी, मौसमी दशाएं, गलाने की विधि और गलाने वाले जल के परिमाण व गुण अधिक महत्वपूर्ण कारक है। इनका रेशा के परिवर्ती गुण पर प्रभाव पड़ता है। इस एकरूपी गुण की कमी के कारण इसके बाजार को आगे बढ़ाने के दृष्टिकोण से रेशा का श्रेणीकरण एवं वर्गीकरण करना आवश्यक होता है।

## tV J.kh dj.k D;k g\

जूट की *कॉरकोरस कैपसुलरिस* तथा *कॉरकोरस ऑलीटोरियस* नामक किस्में हैं। सामान्यतः जूट रेशे के गुण की परख निर्माण प्रक्रिया में इसके व्यवहार और विभिन्न प्रकार के सूत उत्पादनार्थ रेशों की उपयुक्तता द्वारा की जाती है। जूट का बी. आई .एस. श्रेणीकरण अंकपत्रीय श्रेणीकरण प्रणाली है। जिसका उद्देश्य वैयक्तिक पक्षपात खत्म कर यथा संभव इसे व्यवहारिक बनाना है। रेशा की आठ विभिन्न ग्रेडे बनाने के लिए इसकी छटनी करने हेतु छः भौतिक पैरामीटर अर्थात मजबूती, बारीकी, रंग, अवदोष और घनत्व का मूल्यांकन किया जाता है। स्टैंडर्ड स्कोरिंग सिस्टम से प्रत्येक पैरामीटर को सापेक्षिक महत्व दिया जाता है और रेशा ग्रेड छः पैरामीटर के कुल स्कोर से निर्धारित की जाती है।

## J.kh dj.k izfØ;k

### tV J.kh dj.k dh nks i.kkfy;k g&

- gLr p{k i.kkyh
- ;kf=d i.kkyh

J.kh dj.k ckDl

### 1- gLr p{k i.kkyh

एक दक्ष श्रेणीकरण कर्ता अपने हाथ से रेशा टटोलकर उसके भौतिक लक्षणों अर्थात बाराकी, घनत्व एवं मजबूती का मूल्यांकन कर सकता है। जबकि रेशा के रंग, मूलांश और अवदोषों का चाक्षुष मूल्यांकन किया जा सकता है। सामान्यतया हस्त चक्षु प्रणाली बाजार में रखे रेशे का श्रेणीकरण करने तथा गुणवत्ता का मूल्यांकन करने हेतु इस्तेमाल की जाती है। यह प्रणाली व्यक्ति सापेक्ष है और एक श्रेणीकरण कर्ता से दूसरे श्रेणीकरण कर्ता के परखने में अंतर आ सकता है।

### 2- ;kf=d i.kkyh

इस प्रणाली के अंतर्गत रेशा परीक्षण यंत्र से रेशा ग्रेड निर्धारण करने वाले आवश्यक छः भौतिक लक्षणों का मापांकन किया जाता है। ग्रेडों का तथ्यपरक तथा विषयपरक करने हेतु यंत्र का उपयोग अति आवश्यक होता है।

## tV J.kh dj.k dh gLr p{k i.kkyh

श्रेणी के बीआईएस स्टैंडर्ड स्कोर कार्ड सिस्टम का अनुकरण करने हेतु हस्त चक्षु प्रणाली से रेशे के छः भौतिक लक्षण अर्थात्(क) मजबूती (ख) बारीकी (ग) मूलांश (घ) रंग (ङ) अवदोष और (च) घनत्व का मूल्यांकन किया जाता है।

### ¼d½ etcwrh

रेशे की मजबूती मापने के लिए नराई रेशा के मध्य भाग से निकले 10–15 रेशों को एक कर दोनों हाथों की मुठ्ठियों में कसकर पकड़कर और बगैर झटके अनुदैर्ध्य अवस्था में तोड़ने की क्रिया करते हैं। इससे रेशे की मजबूती का अंदाज लग जाता

है। रेशा की बेहतर चमक भी बेहतर रेशा की मजबूती का संसूचक है। जूट रेशा की मजबूती छः वर्गों अर्थात् बहुत अच्छी, अच्छी, संतोषजनक अच्छी, औसत संतोषजनक, संतोषजनक और क्षीण मिश्रित वर्गों में वर्गीकृत की जाती है।

### ¼[k½ ckjhdh

रेशा फिलामेंट की प्रति यूनिट लम्बाई के व्यास अथवा भार की माप बारीकी होती हैं। बारीकी उत्पत्तिमूलक गुण है और फसल काटते समय पौधे की आयु पर भी निर्भर करता है। रेंशों पर सूक्ष्म दृष्टि डालकर बारीकी का सहज आंकलन किया जा सकता है। बारीक रेशों में सर्वश्रेष्ठ कताई गुण दिखलाई देते हैं। बारीकी को चार वर्गों में बांटा गया है अर्थात् बहुत बारीक, बारीक, पूर्णतया पृथक रेशा और पृथक रेशा।

### ¼x½ eyka'k

मूलांश नराई के निचले हिस्से पर पाई जाने वाली कठोर छाल है। रेशा के संसाधन पूर्व ही मिल में कठोर छालदार हिस्सा काट लिया जाता है। व्यापारिक भाषा में इसे कतरन कहते हैं। नराई के ऊपर पाई जाने वाली छाल के परिमाण को पैमाने से मापा जाता है और मूलांश की लम्बाई मूल्य को दोगुना करके भार प्रतिशत के अर्थ में मूलांश का आंकलन किया जाता है। सामान्यतया, तोसा जूट की अपेक्षा सफेद जूट में कठोर छालदार हिस्सा अधिक रहता हैं।

### ¼?k½ jax

रंग का तात्पर्य है रेशा का वह गुण जिसके द्वारा इसके स्वरूप की पहचान होती है कि यह किस रंग का है जैसे लाल, पीला, धूसरी इत्यादि। यह अधिकाशं गलाने की दशाओं, जल के गुण और धुलने पर निर्भर करता है। सफेद जूट और तोसा जूट के स्कोर मार्कस और बी.आई.एस. विशिष्टीकरण में यथा परिभाषित रंगों का स्पष्टीकरण किया गया है।

### ¼³½ vonk'k

रेशों की गुणवत्ता को आंशिक और भारी क्षति पहुंचाने वाले कारक अवदोष माने जाते हैं। जूट रेशा देह में 12 अवदोषों की पहचान की गयी है, जिनमें मुख्यतः दो वर्गां में बांटा गया है –

1. प्रधान अवदोष 2. अप्रधान अवदोष

| iz/kku vonk'k | vizèkku vonk'k |
|---|---|
| • अतिगले रेशे | • श्लथ पर्ण वाला रेशा |
| • स्तंभित रेशा | • श्लथ डंठल वाला रेशा |
| • मध्य में मूलदार रेशा | • चितकेदार रेशा |
| • कठोर छालदार रेशा | • गोंदीय रेशा |
| • गठिया रेशा | • कमजोर अग्रभाग वाले रेशे |
| • फसवा डंठल वाला रेशा | |
| • काईदार रेशा | |

### ¼p½ ?kuRo

बहुपंजी रेशा एवं उसमें प्रविष्ठ वायु के प्रति यूनिट भार का मापांकन घनत्व कहलाता है। रेशा राशि के मध्य भाग से निकाले गए फीतादार रेशा समूह को हाथों की दोनों हथेलियों पर रखकर ऊपर–नीचे करते हुए भारीपन अथवा हल्केपन का अनुभव

कर घनत्व का पता लग सकता है। नमूना जो अधिक भारी लगे उस रेशा को ''हैवी बॉडी'' ग्रेड में रखा जाता है और हल्का लगे तो ''मध्यम बॉडी'' ग्रेड में शामिल किया जाता है।

## dEI;VjhÑr lpukRed iz.kkyh

हाल में ही संस्थान में जूट श्रेणीकरण की एक ऐसी सूचनात्मक प्रणाली का विकास किया गया है जिसके ज़रिए रेशा के तत्क्षण तथा विशुद्ध श्रेणीकरण किया जा सकता है। इस सॉफ्टवेयर के माध्यम से श्रेणीकरण संबंधी सूचना प्राप्त करने के लिए सबसे पहले रेशा की किस्म का चयन करते हैं कि वह *कैपसुलरिस* है अथवा *ऑलिटोरियस*, इसके बाद इसके विभिन्न छः पैरामीटरों का चयन करते हैं। जैसे ही पैरामीटरों का मूल्य प्रविष्ट करते हैं त्यों ही डिसप्ले बोर्ड पर इसका मूल्य साथ–साथ अंशांकित हो जाता है। इस आधार पर जूट रेशा की कुल ग्रेडों भी अंशांकित हो जाती हैं।

## Js.khdj.k dh x.kuk

जूट श्रेणीकरण करने में इसके छः पैरामीटरों यथा मजबूती, बारीकी, रंग, मूलांश, अवदोष और घनत्व की गणना करते हैं। सफेद जूट की ग्रेडें डब्ल्यू 1 से डब्ल्यू 8 और तोसा जूट की टी.डी.1 से टी.डी. 8 तक होती है। (बंधोपाध्याय 1967)। जैसे ही जूट श्रेणीकरण के विभिन्न पैरामीटरों को प्रविष्ट करते हैं डिसप्ले बोर्ड पर श्रेणीकरण मूल्य अंशांकित हो जाते हैं और अंतिम तौर पर इसके श्रेणीकरण मूल्यों की गणना कर ली जाती हैं।

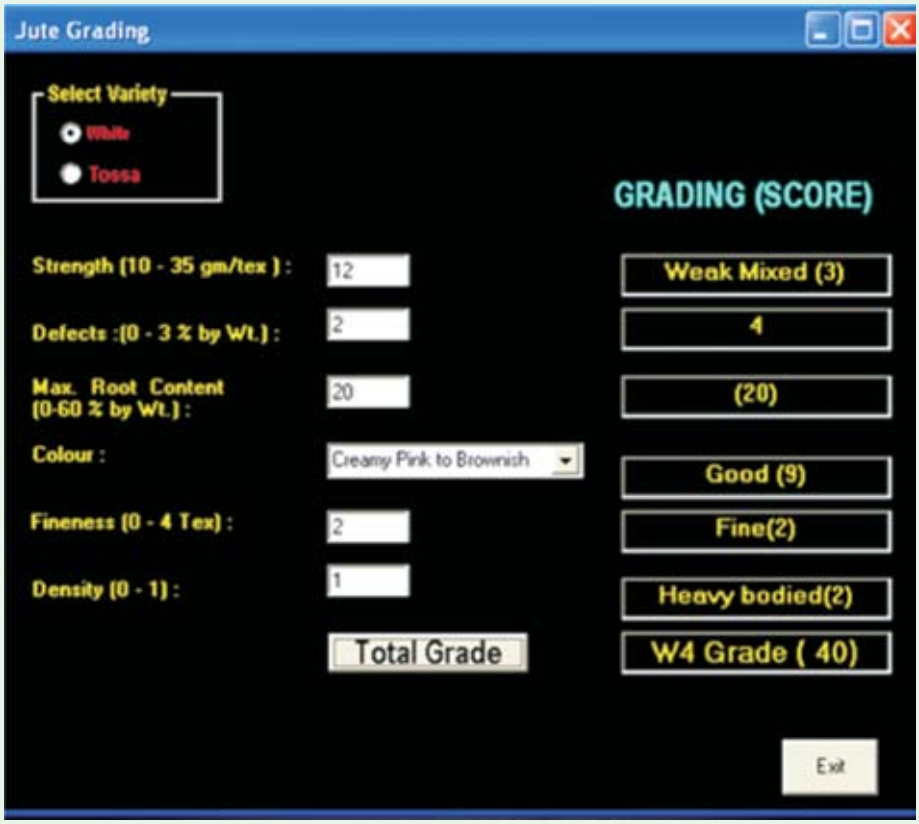




## fu"d"k

रेशों के परिवर्ती गुणों पर अनेक कारकों का प्रभाव पड़ता है। जिसमें मिट्टी, जलवायु और गलने वाले जल का परिमाण एवं गुण अनियंत्रित कारक हैं। जबकि किस्में, खेती करने की पद्यतियों, गलाने की विधि और रेशा निष्कर्षण इत्यादि नियंत्रणीय

कारकों के रूप में जाने जाते हैं। फिर भी मिट्टी, मौसमी दशाएं, गलाने की विधि और गलाने वाले जल के परिमाण व गुण अधिक महत्वपूर्ण कारक होते हैं। इनका रेशा के परिवर्ती गुणों पर प्रभाव पड़ता है। इस एक रूपी गुण की कमी के कारण इसके बाजार को आगे बढ़ाने के दृष्टिकोण से रेशा का श्रेणीकरण एवं वर्गीकरण करना आवश्यक होता है।

पूर्ण श्रेणीकरण प्रणाली में ''उत्पत्ति स्थान'' जूट रेशा श्रेणीकरण का मूलभूत मार्गदर्शी था। पूर्वकाल में व्यापार की लगभग 70 व्यापारिक ग्रेड प्रचलन में थी। ये ग्रेडे रेशा ''उत्पत्ति स्थान'' के अनुसार व्यापारिक वर्गीकरण से संबंधित थी जैसे– चयनित असम, मध्यम मुर्शिदाबाद, ऊपरी नदियाँ इत्यादि। किसानों को ऐसी श्रेणीकरण प्रणाली का अनुकरण करना बहुत ही अहितकारी और असुविधाजनक था। जिसके परिणामस्वरूप कृषक अपनी उपज की गुणवत्ता का पता लगाने में असमर्थ रहता था। अतः स्पष्ट है कि पूर्ण श्रेणीकरण प्रणाली बहुत ही अवैज्ञानिक एवं स्वेच्छाचारी के साथ–साथ उत्पादकों के लिए अहितकारी थी। सामान्यताः जूट उत्पादकों को केवल यही मालूम है कि इस रेशा के साधारण एवं अन्तिम उत्पाद हैसियन और बोरा ही हैं। किन्तु उन्हें यह जानकारी भी होनी चाहिए कि इन रेशों से पृष्ठाधान, दीवान अलंकरण, कुशन, वस्त्र रेजिन संसक्ति बार्ड जैसे विभिन्न विशिष्ठ समान भी तैयार होता है। अतः स्पष्ट है कि सर्वोत्तम गुण वाले रेशा की बेहतर कीमत निश्चित है। परन्तु किसान गुणवत्ता की पर्याप्त जानकारी के आभाव में अपनी उपज की उपुयक्त कीमतें लेने से वंचित रह जाते हैं। इसे ध्यान में रखते हुए जूट रेशा का उचित श्रेणीकरण करना अति आवश्यक समझा जाता है जिसके लिए इस कंम्प्यूटरीकृत सूचनात्मक प्रणाली विकास किया गयाहै।

## lanHk


1. बंधोपाध्याय एस.बी. (1967) द ग्रोअर ऐंड ए ग्रेडिंग ऑफ जूट, जूट बुलेटिन, 29 : 232–236
2. बसक एम.के., घोश एस.के., सिन्हा ए.के., मजूमदार ए., पाण्डेय एस.एन. (1989) एसपेक्टस ऑफ जूट टेक्नोलॉजी ऐंड इट्स इम्पेक्ट ऑन रूलर डेवलमेंट, जूट डेबल. जर्न., 9(2) : 1–4
3. भट्टाचार्य एस.के. ऐंड बासु एम.के., क्वालिटी इम्प्रूवमेंट ऑफ जूट फाइबर, पी.टी.आई. साईंस सर्विस, 5, 15, 1986
4. दास बी.के., राय पी.के. ऐंड चक्रवर्ती ए.सी., जूट फाइर्बस एट डिफ्रेंट स्टेज ग्रोथ, टेक्टस ट्रेड्स, जून, 1977, पृ. 45.

# खरगोश उत्पादन : पर्यावरण प्रबंधन

Mk- ,l-d- nkl[1] ,o Mk- ,e- d:.kkdj.k[2]

खरगोश मूलरूप से शीतोष्ण क्षेत्र में रहने वाला पशु है। इसलिए उन्हें अधिक तापमान की अपेक्षा कम तापमान (10–25$^0$ सें.) पसंद होता है। उनके उत्पादन में विभिन्न वातावरणीय घटकों में परिवेशी तापमान सर्वाधिक महत्वपूर्ण होता है। खरगोश की उत्पादकता को प्रभावित करने वाले अन्य वातावरणीय घटक हैं जैसे सापेक्ष आर्द्रता, वर्षा, हवा की गति, प्रकाश और सौर विकिरण। इनका खरगोश के सभी उत्पादक और प्रजनक संबंधी विशेषताओं पर वातावरण का बड़ा भारी प्रभाव पड़ता है, इसलिए आर्थिक दृष्टि से खरगोश उत्पादन के लिए इन सभी की जानकारी होना बहुत आवश्यक है।

## ifjos'kh rkieku

खरगोश समतापी पशु होने के कारण उसके मस्तिष्क के हाइपोथैलमस में स्थित ताप नियामक प्रणाली के माध्यम से गहन शारीरिक तापमान को ऊष्मा के संग्रहण और क्षति से संतुलित रखता है। ऊष्मा की क्षति को सुधारने हेतु वे तीन उपायों को प्रयोग में लाते हैं : शरीर की सामान्य स्थिति या स्थिति परिवर्तन, श्वसन और सतह के तापमान विशेष रूप से कान का तापमान। यदि परिवेशी तापमान कम (10$^0$सें. से कम) होता है तो खरगोश विकीरण क्षति कम और कानों का तापमान कम करने के लिए अपने शरीर को गेंद की तरह समेट लेता है। इसके विपरीत यदि तापमान अधिक होता है (25–30$^0$सें. के ऊपर) तो खरगोश विकीरण बढ़ाने और शरीर की सतह से ऊष्मा को कम करने के लिए अपने शरीर को फैला देता है और शरीर का तापमान परिवेशी तापमान के अनुकूल स्थिर रहता है। खरगोश के कान कार के रेडिएटर की तरह कार्य करते हैं। शीतल प्रणाली की सक्षमता पशु के आस–पास हवा की गति के ऊपर निर्भर होती है। खरगोश के पसीने वाले ग्लैंड कार्यशील नहीं होते इसलिए ऊष्मा की अनवरत वाष्पीकरण से क्षति बहुत कम होती है, यह कार्य केवल बाह्य कानों और पैरों के निचले हिस्से से होता है (लेबास, 1986, हार्कनेस 1988)।

गुप्त ऊष्मा क्षति के अन्य तरीके हैं : हाँफना और श्वसन वाष्पीकरण, जिसमें हाँफना बढ़ जाय और श्वसन दर बढ़ जाय तो ऊष्मा की क्षति होती है। श्वसन दर चार गुना 300–400 प्रति मिनट तक बढ़ सकती है। यदि परिवेशी तापमान 35$^0$ सें. से अधिक होता है, तो खरगोश अपने आंतरिक शरीर के तापमान को अधिक देर तक अनुकूल नहीं रख सकता और भीतर ऊष्मा का प्रतिकूल प्रभाव होने लगता है। खरगोश ऊष्मा क्षति और ऊष्मा संग्रहण को आहार व पानी की मात्रा बढ़ाने–घटाने से भी अनुकूल बना सकता है। ऊष्मा अनुकूलन नवजात खरगोश शिशुओं में थोड़ा अलग होता है। नवजात खरगोश वसा अपचय, कंपकंपाहट और सिमट कर बैठने से शीत दवाब के दौरान ऊष्मा संग्रहण को बढ़ाते हैं। इनकी ऊष्मा अनुकूलन प्रणाली 2 सप्ताह में विकसित होती है। उनके लोम चर्म न होने से वे अपने आहार लेने के तरीके को ठीक से समायोजित नहीं कर पाते क्योंकि वे मादा का दूध लेते हैं जो उनकी आवश्यकतानुसार प्राप्त नहीं हो पाता। जन्म के समय उनमें काफी वसा मौजूद होती है, जैसे भूरी चर्वीयुक्त ऊत्तक, जो ऊष्मा–विहीन क्षेत्र के अन्तर्गत शरीर के तापमान को अनुकूल बनाए रखने में सहायक होते हैं। छोटे से खरगोश एकदम सिमटकर नहीं बैठ सकते बल्कि ऊष्मा क्षति कम करने का उनके पास एक ही तरीका होता है कि वे एक दूसरे से चिपक कर हांपते हैं और इससे ऊष्मा संचालन तथा संवहन से ऊष्मा की क्षति कम होती है। जब तापमान अधिक होता है तो छोटे खरगोश एक दूसरे से अलग होकर ऊष्मा क्षति को बढ़ा देते हैं।

खरगोश में सहानुभूतिपूर्ण अवरोधन से 20$^0$ सें. पर ऊष्मा दबाव संचरित होने लगता है, जिसमें 25$^0$ सें. पर वाष्पीकरण बढ़कर अधिक हो जाता है और 35$^0$ सें. पर धड़कन बढ़ती रहती है, जब तक कि मलाशयी तापमान 40$^0$ से अधिक नहीं

[1] iªkku oKkfud (पशुधन उत्पादन प्रबंधन), गोवा के लिए भा.कृ.अनु.प. का अनुसंधान परिसर, एला, ओल्ड गोवा
[2] ofj"B oKkfud (पशु प्रजनन), राष्ट्रीय डेरी अनुसंधान संस्थान का पूर्वी क्षेत्रीय केन्द्र, कल्याणी, पं.बं.

हो जाता। औसत प्राणघातक मलाशयी तापमान 42.8$^0$ से. है। तापमान जब अधिक (40–41$^0$सें.) होता है तो खरगोश हांपने लगाता हैं, मलत्याग करता है उनकी लार टपकने लगती है और अपने आगे के पैरों को चाटने लगता है। व्यावसायिक खरगोश पालन में पाया गया है कि जब वातावरण का तापमान 33$^0$ सें. से अधिक हो जाता है, तो गर्मी अधिक हाने से खरगोश मर जाते हैं। तापमान और नमी बढ़ जाने पर खरगोश का आहार ग्रहण करना कम और पानी पीने की मात्रा बढ़ गयी। पाया गया है कि परिवेशी तापमान (32.20$^0$सें.) बढ़ जाने से (पी.>0.01) दैनिक आहार और मलाशयों के तापमान का अधिक असर पड़ता है। यह भी पाया गया है कि कम तापमान (17$^0$ सें.) और अधिक तापमान (32.2$^0$ सें.) में औसत दैनिक शारीरिक बढ़त और औसत दैनिक आहार की मात्रा 22.7 ग्राम, 11.4 ग्राम तथा 205 ग्राम, 133 ग्राम प्रतिदिन रही, यह रिपोर्ट मिली है कि परिवेशी तापमान से दैनिक आहार की मात्रा विशेष रूप से (पी.>0.01) प्रभावित हुई है और आहार की मात्रा प्रति डिग्री सें. तापमान बढ़ जाने पर 1.16 ग्राम घट जाता है। आहार ग्रहण की मात्रा 20$^0$ सें. तापमान पर सर्वाधिक रही।

## lkis{k vknzrk

खरगोश बहुत कम आर्द्रता (55 प्रतिशत से नीचे) के प्रति बहुत संवेदनशील होते हैं मगर अधिक आर्द्रता इनके अनुकूल होती है क्योंकि खरगोश अपना अधिकांश जीवन भूमि के नीचे खुदे हुए बिल में व्यतीत करते हैं, जहां नमी (100 प्रतिशत) मौजूद होती है। नमी में अचानक परिवर्तन उनके स्वास्थ्य और उत्पादन के लिए हानिकारक होता है। फ्रांसिसी श्रमिक 60–65 प्रतिशत नमी स्तर उचित मानते हैं। अधिक तापमान के साथ अधिक नमी कष्टदायी होती है, क्योंकि इससे वाष्पीकरण ऊष्मा की क्षति कम होती है, जिसके परिणाम स्वरूप उन्हें बेचैनी होने लगती है और उसके बाद वे जमीन पर बेसुध पड़ जाते हैं। उष्ण कटिबंधीय क्षेत्रों में वर्षा ऋतु के दौरान भारी समस्या हो जाती है। बहुत कम तापमान के साथ अधिक नमी भी समान्य रूप से कष्टदायी होती है क्योंकि दीवारों पर पानी की सघन परत जम जाती है। इससे अधिक ठंड प्रवेश कर जाती है, जिससे पशु में संचलन व संवहन द्वारा ऊष्मा की क्षति होती है। उसके बाद प्रायः पाचन और श्वसन सम्बन्धी विकार आ जाते हैं। अधिक तापमान पर कम आर्द्रता भी खतरनाक होती है, क्योंकि इससे श्लेष्मा संतुलन ही नहीं बिगड़ता बल्कि श्वसन क्रिया सम्बन्धी विकार की भी संभावना बढ़ जाती है। हॉफेज (1970) ने अपनी रिपोर्ट में बताया है कि जैसे आर्द्रता बढ़ती है, खरगोश के आहार और पानी ग्रहण की मात्रा कम हो जाती है। सू एवं अन्य लेखक (1992) ने रिपोर्ट किया है कि प्रति 1 प्रतिशत आपेक्ष आर्द्रता बढ़ जाने पर दैनिक आहार की मात्रा में 0.16 ग्राम की विशेष कमी आयी है और 52 प्रतिशत सापेक्ष आर्द्रता होने पर आहार लेने की मात्रा सर्वाधिक रही।

## ok;q lapkj

खरगोशशाला में एक निश्चित न्यूनतम वायु संचार की उचित व्यवस्था होनी चाहिए जिससे हानिकारक गैसें निष्कासित होती रहें, जो खरगोश द्वारा उत्सर्जित कार्बनडाइऑक्साइड और मलमूत्र से अमोनिया, हाइड्रोजन, सल्फाइड, मिथेन आदि होती हैं तथा साथ ही ताजी ऑक्सिजन मिलती रहे। इसके अलावा खरगोश से बनने वाली अधिक नमी और अधिक गर्मी से भी छुटकारा मिलता रहे। वायुसंचार की व्यवस्था जलवायु पर निर्भर करती है, जैसे कि पिंजड़े के रूप और उसमें पाले जाने वाले खरगोशों की संख्या। अपेक्षित वायु गति अर्थात सुविधाजनक रूप में अपेक्षित तापमान के साथ वायुसंचार व्यवस्था होनी चाहिए। कम तापमान में वायु की तेज गति से शीत शुष्कता यानी पेट में अवरूद्धता आ जाती है। अधिक तापमान में वायु की धीमी गति से श्वसन क्रिया पर प्रभाव होता है। वायु में अमोनिया का उच्च स्तर यानी 20–30 पी.पी.एम. से खरगोश की ऊपरी श्वसन तंत्र के लिए खरगोशशाला में वायु संचार की व्यवस्था प्रर्याप्त होनी चाहिए। यह बताया गया है कि न्यूजीलैण्ड श्वेत खरगोश को अ, ब, स तीन खरगोशशालाओं में रखा गया जहां क्रमशः 2.27, 5.49, 11.54 घनमीटर/घंटा/खरगोश की दर से वायु संचार व्यवस्था थी तो अमोनिया का स्तर अ में 40.3, ब में 26.2 तथा स में 13.3 था जिसके फलस्वरूप मृत्युदर अ, ब, स, खरगोशशालाओं में क्रमशः 34, 19, तथा 1 प्रतिशत रही।

## i|dk'k 0;oLFkk

खरगोश पर प्रकाश के प्रभाव सम्बन्धी कुछ अध्ययन किए गये जो विशेषरूप से प्रकाश की अवधि एवं कुछ प्रकाश की सघनता से संबंधित थे। चौबीस घंटे में 8 घंटे प्रकाश की सुविधा होने से नर खरगोशों में शक्राणुजनन और यौन गतिविधि का आधिक्य होता है। इसके अतिरिक्त प्रतिदिन 14–16 घंटे तक प्रकाश की व्यवस्था होने से मादाओं की यौन गतिविधि तथा प्रजनन क्षमता में वृद्धि होती है। चौबीस घंटे के प्रकाश परीक्षण में खरगोशों में प्रजनन सम्बन्धी व्यवधान देखे गये। इसलिए इससे प्रतीत होता है कि 16 घंटे की प्रकाश व्यवस्था सबसे उचित है। बहुत छोटे खरगोशों को अतिरिक्त प्रकाश की आवश्यक्ता नहीं होती, किन्तु 15–16 घंटे प्रतिदिन के हिसाब से प्रर्याप्त होती है। चौबीस घंटे की प्रकाश व्यवस्था से पाचन संबंधी व्यवधान आ सकते है अथवा उनके सामान्य गतिविधि में अन्तर आ जाता है। छोटे खरगोशों के लिए धुंधला प्रकाश उपयुक्त रहता है। विभिन्न जांचकर्त्ताओं ने संस्तुत किया है कि प्रजनन वाले खरगोश के लिए वर्षभर के दौरान प्रकाश की व्यवस्था 15–17 घंटे प्रतिदिन, 3 वाट प्रति वर्ग मी. की दर से और मांस वृद्धि के लिए 12 घंटे प्रतिदिन एवं 3 वाट प्रति वर्ग मी. होना चाहिए।

## fu"d"k

खरगोशशाला की संरचना एवं प्रबंधन हेतु आर्थिक दृष्टि से खरगोश पालन के मामले में पर्यावरण संबंधी विभिन्न घटकों की जानकारी होना अत्यन्त आवश्यक है, जिससे अच्छा उत्पादन हो सके। खरगोश पालन के लिए 10–25$^{0}$ सें. तापमान और आपेक्ष आर्द्रता 60–65 प्रतिशत, 12–16 घंटे का प्रकाश सबसे अनुकूल पाया गया। ग्रीष्म ऋतु में खरगोश अधिक गर्मी के प्रति बहुत संवेदनशील होते हैं, इसलिए गर्मी कम करने के उपाय जरूरी हैं, जैसे कि दोनों ओर से वायु संचार की व्यवस्था, पंखे का प्रयोग, खरगोशशाला के आस–पास वृक्षारोपण से गर्मी का प्रकोप कम करना आदि।

U;w thyM [kjxks'k

lkfo;r fpufpYyk [kjxks'k

dkyk Hkjk [kjxks'k

# गोवा मे शूकर पालन

Mk- ,dukFk ch- pkdjdj[1] ,oa Mk- ,e- d:.kkdj.k[2]

## ifjp;

गोवा राज्य की जनसंख्या लगभग 13 लाख है तथा वह भारतीय उपमहाद्वीप में एक प्रमुख पर्यटन स्थल है जहां सालभर औसतन 14 लाख पर्यटक दौरे पर आते हैं। यद्यपि खनन और पर्यटन से इस राज्य को सबसे ज्यादा आय होती है, किंतु इस राज्य की अर्थव्यवस्था में कृषि और उससे संबद्ध क्षेत्रों की भी प्रमुख भूमिका है। राज्य में बेरोजगार शिक्षित युवाओं की संख्या बढ़ रही है और उनमें से अधिकांश युवा कृषक समुदाय/ग्रामीण क्षेत्रों से संबंधित हैं। इस तरह के अनुकूल वातावरण में इस राज्य में पशुधन उद्योग की अच्छी संभावनाएं हैं। गोवा की अधिकांश आबादी मांसाहारी है और पर्यटन के कारण भी मांस उत्पादन की मांग होती है। यहां शूकर मांस और मांस उत्पादों जैसे सॉसेज आदि की अच्छी मांग होती है जिससे शूकर पालन को एक उप व्यवसाय के रूप में अपनाया जा सकता है।

## 'kdjksa dk bfrgkl vkj izdkj

इतिहास के अनुसार शूकर पालन का प्रवर्तन गोवा में पुर्तगालियों के शासन काल में मैल हटाने के लिए हुआ था जिसमें बाहरी और स्थानीय रूप से घरेलू शूकर पालन ग्रामीण संस्कृति का एक हिस्सा बन गया था। यह शूकर पालन खुले रूप से किया जाता था। कभी–कभी उन शूकरों का उपयोग मांस के रूप में भी किया जाता था और त्यौहारों के अवसर पर इस मांस का उपयोग विभिन्न व्यंजनों में किया जाता था। इस प्रथा में कुछ सुधार किया गया और कुछ स्थानों पर अर्ध विचरण प्रणाली अपनाई गई जिसमें शूकरों को रात में ठहराने के लिए आश्रय बनाया गया और शूकरों के बेहतर विकास के लिए रसोई में बचा हुआ खाना अतिरिक्त पोषक तत्व के रूप में उन्हें खिलाया गया है। अभी हाल के वर्षों में शहरीकरण बढ़ जाने से शूकर पालन नए बंद प्रथा या स्टालों में होने लगा है। इस प्रकार का शूकर पालन आधुनिक एवं वैज्ञानिक है जिसमें निवेश कम और श्रम ज्यादा करना पड़ता है।

गोवा में शूकर पालन पारम्परिक रूप से घरेलू पशुपालन के रूप में हो रहा है और शूकर मांस आहार का हिस्सा हो गया है। उन परिवारों में शूकर पालन आजीविका अर्जन का स्त्रोत हो गया है जिनके पास कोई भूमि नहीं है। शूकर के पोषण के लिए गोवा होटल के रसोईघर का बचा हुआ खाना या अपशिष्ट, ब्रॉयलर का ऑफल (कूड़ा करकट) भी आसानी से मुफ्त में या बहुत कम दाम में उपलब्ध हो जाते हैं जिससे युवा लोगों को शूकर पालन का प्रोत्साहन मिल रहा है। बेहतर आय के लिए शूकरों का उत्तम स्टॉक की जरूरत है।

## fofHkUu xfrfofèk;ksa esa ykxksa dh Hkkfxnkjh

गोवा में शूकर उद्योग की देखभाल विभिन्न जन समूहों द्वारा की जाती है। कुछ लोग केवल शूकर पालन ही करते हैं जिन्हें वे बड़ा करके स्थानीय बाजार तक पहुंचाते हैं। कुछ लोग शूकरों का घरेलू पशुपालन करके अपने घर में ही मांस का प्रयोग करते हैं। कुछ लोग शूकर के व्यापार में लगे हैं और कुछ शूकर मांस उत्पादन से संबंधित हैं, वे शूकरों को स्थानीय और पड़ोसी राज्यों से खरीदते हैं और व्यापार करते हैं। वे शूकरों को इकट्ठा करके उन्हें मांस के लिए काटते हैं। कुछ लोग सॉसेज़ जैसे शूकर के मांस उत्पादों के व्यापार में लगे हुए हैं। सॉसेज़ बनाने का काम कुटीर उद्योग के रूप में हो रहा है और स्थानीय बाजारों तथा निर्यात के लिए भी इसको तैयार किया जाता है।

[1] izèkku oKkfud (पशु प्रजनन), गोवा के लिए भा.कृ.अनु.प. का अनुसंधान परिसर, एला, ओल्ड गोवा
[2] ofj"B oKkfud (पशु प्रजनन), राष्ट्रीय डेरी अनुसंधान संस्थान का पूर्वी क्षेत्रीय केन्द्र, कल्याणी, पं.बं.

## LoLN 'kdj ekl mRiknu rFkk miHkkDrkvksa dh ilan

स्वच्छता और स्वास्थ्य के बारे में जागरूकता बढ़ जाने से यह आवश्यक है कि शूकर मांस को स्वच्छ और उपभोक्ताओं की पसंद का होना चाहिए। अधिकांश विदेशी पर्यटकों की पसंद विदेशी नस्ल के शूकरों का मांस होता है, क्योंकि वे समझते है कि स्टालों में पाले गये हैं और स्थानीय शूकरों का मांस पंसद नहीं करते हैं क्योंकि उन्हें लगता है कि ये बाहर घूमकर कूड़ा, कचरा आदि खाते हैं।

## ljdkjh lxBu dh Hkfedk

गोवा में पशुपालन एवं पशु चिकित्सा सेवा विभाग के पास पोंडा में एक शूकर यूनिट मौजूद है जिसमें बड़े सफेद यार्कशॉयर का पालन किया जाता है। इस यूनिट में शूकर पालन और प्रजनन के लिए किसानों को शूकर के बच्चे उपलब्ध कराए जाते हैं। शूकर पालन को प्रोत्साहित करने के लिए इस विभाग की कई योजनाएं भी हैं।

गोवा स्थित भा.कृ.अनु.प. का अनुसंधान परिसर, में पिछले 25 वर्षों से एक शूकर इकाई से मौजूद है जहां बड़े सफेद यार्कशॉयर, ड्यूरॉक, गोवा के स्थानीय और विभिन्न संकर नस्लें सुरक्षित हैं। गोवा में अखिल भारतीय समन्वित शूकर अनुसंधान परियोजना केंद्र में इस सामग्री को उपलब्ध कराया जा रहा है तथा पशुपालन एवं पशु चिकित्सा सेवा के राज्य विभाग को तकनीकी सहायता और प्रजनन स्टाक भी उपलब्ध किया जाता है।

गोवा स्थित भा.कृ.अनु.प. का अनुसंधान परिसर में विभिन्न अनुसंधान परियोजनाएं भी चल रही हैं जिनमें से कुछ इस प्रकार हैं –

1. अखिल भारतीय समन्वित शूकर अनुसंधान परियोजना
2. जैव प्रौद्योगिकी विभाग द्वारा प्रायोजित परियोजना – शूकरों में कृत्रिम गर्भाधान कार्यक्रम
3. राष्ट्रीय कृषि विकास योजना द्वारा वित्तीय सहायता प्राप्त संकर शूकर पालन एवं वितरण परियोजनाऐं

संस्थान के विभिन्न अनुसंधान परियोजनाओं के अंतर्गत पोषक तत्वों की आवश्यकता, गोवा के स्थानीय शूकरों की यौन परिपक्वता जैसे विषयों पर प्रयोग किए जा रहे हैं और इन्हें नियमित रूप से संचालित किया जा रहा है।

xkok dh e'kgj ikd lkl t

M;jkd] cMk lQn ;kd'kk;j] ldfjr 'kdj rFkk xkok LFkkuh; uLy

# दुधारू जानवरों का रोग एवं रोकथाम –भाग 2

Mk- ,l- ch- ckjcj)s[1]

## Fku\Syk ;k Lru&dksi ;k Fku dh lwtu ;k Fkub\Sy ¼eSLVkbfVl&Mastitis½

इस रोग में पशुओं के अयन (udder) में दर्द भरा सूजन हो जाती है तथा पशु प्रभावित थन (teat) को छूने नहीं देता है। यह रोग अधिकतर नई और अधिक दूध देने वाले पशुओं को होता है। दूध का रंग बदल जाता है, मात्रा कम हो जाता है और वह पीने के योग्य नहीं रहता है।

dkj.k & अयन (udder) की सूजन जीवाणुओं के कारण होती है। अयन में घाव होने, गन्दे अयन, खराब तरीके से दुहना, गन्दे हाथों से दुहना, ठंढ़ लग जाना, अधिक देर तक थन में दूध भरा रहना, अपूर्ण दुहान, गर्भ में बोझ ढोने वाले पशु (Carrier), अत्यधिक प्रोटीनयुक्त आहार, गन्दे और गीले गौशाला इत्यादि कारणों से यह रोग होता है। इस रोग के प्रमुख जीवाणु *स्टैफाइलोकोकस, स्ट्रैप्टोकोक्स, माइक्रोबैक्टीरियम ट्यूबरकुलोसिस, कोराइनेबेक्टेरियम पार्योजिन्स* आदि है। यह रोग अयन के एक भाग या दो या सारे स्तन में हो जाता है।

y{k.k & यह अतिपाति (Acute) और दीर्घकालिक (Chronic) होता है। आक्रमित अयन पर पीड़ा दायक सूजन हो जाता है। थन गरम या कड़ा हो जाता है। दूध पतला, खूनी, गाढ़ा पीला जैसा हो जाता है। आम और पर दूध में फूटकियाँ (Clots) पड़ जाती है। पशु को ज्वर भी आ जाता है। वह खाना पीना भी छोड़ देती है।

रोग पुराना होने पर दूध पूरी तरह से निकलना बन्द हो जाता है। (थन मारा जाता है) और पीड़ा कम होता है। थन लचीले उत्तक (Glandular Tissues) खराब होकर घटने लगते हैं और उसकी जगह पर तन्तु वाले उत्तक (Fibrous tissues) बढ़ने लगते हैं। कभी–कभी फोड़ा बन जाता है अयन पीब (Pus) से भर जाता है। थन सिकुड़ जाता है। ऐसी स्थिति में जीवाणुओं के प्रसार व बढ़ने को रोककर अयन को अधिक हानि से बचाया जा सकता है।

## v;u ¼Udder½ dh tk¡p &

i) अयन स्वभावतः मुलायम, कोमल एवं लचीला होता है। इससे दूध निकलने पर इसमें सिकुड़न आ जाती है तथा यह छोटा हो जाता है। यदि सिकुड़न और छोटापन नहीं आया तो उसे मांसल (fleshy) समझा जाता है।

ii) अयन को हाथ से टटोलकर एवं दबा कर देखने पर यदि उसमे कोई भाग कड़ा या गर्म मालूम पड़े तो यह किसी रोग का सूचक होता है।

iii) आगे पीछे से को देखने पर यदि कोई थन (teat) बड़ा, छोटा या सूखा मालूम पड़े तो वह किसी रोग का सूचक होता है।

iv) थन को हाथ के दो अंगुलियों से नीचे से ऊपर तक दबा कर देखने पर यदि उसमें किसी प्रकार का गिल्टी या गाँठ या कड़ेपन का अनुभव हो तो वह रोग का संकेत समझा जाता है।

v) थन से दूध की मात्रा कम हो, रंग बदला हो या दूध फुटकियां युक्त हो तो यह थनैला का लक्षण होता है।

vi) प्रसव के बाद यदि थन का छिद्र बन्द हो तो उसे गुनगुने पानी में सेवलान या डेटाल डालकर छिद्र को साफ कर खोल दें अन्यथा थनैल होने का भय रहता है।

---

[1] iz/kku oSKkfud (पशु चिकित्सा एवं सार्वजनिक स्वास्थ्य) गोवा के लिए भा.कृ.अनु.प. का अनुसंधान परिसर, एला, ओल्ड गोवा

vii) अयन पर यदि किसी प्रकार का फोड़ा, फुन्सी, घाव, अइला (Papilloma) आदि हो तो उसे रोग समझें।

## nèk dh tkp

1. jx n[kdj & यदि दूध का रंग गाढ़ा, लालीपन लिये हुये या फुटकियां (clots) उक्त हों तो इसे थनैला का लक्षण समझें।
2. p[kdj & यदि चखने में दूध नमकीन गाढ़ा हो तो थनैल का शंका करना चाहिए।
3. दूध का पी.एच. जाँचकर–सामान्य शुद्ध दूध अम्लीय होता है और इसका पी.एच. 6.6 से 6.8 तक रहता है। इसमें अधिकता होने पर थनैल प्रभावित दूध का पी.एच. 7.4 तक हो सकता है।
4. Fkuyk tkp dkM (eLVkbfVl fMVD'ku dkMZ) & इस में कार्ड पर 2–4 बून्द दूध डालकर देखने पर यदि दूध का रंग बदल जाता है तो थनैला समझा जाता है।
5. jkl;k;fud tkp
   - माइक्रॉस्कोप द्वारा (Microscopic) जीवाणु जाँच – इसके अतिरिक्त विशेष जांच केन्द्र पर थनैला की पूरी जांच निम्न विधियों द्वारा करायी जा सकती है।
   - eLVM lkY;w'ku ;k ,e-Mh-vkj- lkY;w'ku ls & रोगग्रस्त थान (teat) से निकाला 3–4 मि.ली. दूध किसी प्याली में लेकर उतना ही मैस्टेड सोल्यूशन मिलाकर धीरे–धीरे गोल घुमाकर देखने पर यदि तल में ठोस जमा होता है तो इसे थनैला रोग समझा जाता है।
   - eLVkbfVl fj,tUV ls–किसी सफेद प्याली में 2–3 मि.ली. दूध लेकर आपूर्ति किये गये नपने से सोल्यूशन को दूध में मिलाकर गोल घुमाकर देखने पर निम्न प्रकार के परिवर्तन देखने को मिल सकते है :
     - यदि दूध में कोई परिवर्तन नहीं हुआ–तो समझें दूध ठीक है।
     - यदि प्याली के तल में ठोस जमा हो तो थनैला रोग समझें।
     - यदि दूध का रंग पीला हुआ तो दूध को अम्लीय समझें।
     - यदि दूध का रंग नीला हुआ, तो दूध की क्षारीय समझें।

## mipkj

रोगी पशुओं को स्वस्थ पशुओं से अलग रखना चाहिए और उसकी देखभाल के लिये अलग से आदमी रखना चाहिए। यदि दुहने वाला व्यक्ति एक ही हो तो पहले स्वस्थ पशु को दुहना चाहिए। चारा दाना सुपाच्य व हल्का दस्तावर देना चाहिए। प्रोटीन ज्यादा नहीं देना चाहिए। पानी पूरा पिलाना चाहिए। यदि जरूरत हो तो दूध निकालने वाली नली को प्रयोग में लाया जा सकता है। धन से दूध हमेशा समय पर निकालते रहना चाहिए। यदि घाव पहले से हो तो उपचार करना चाहिए। दर्द और सूजन को कम करने के लिए गर्म पानी में बोरिक एसिड या नमक डाल कर सेंकना चाहिए। सेंकने के बाद अयन व थनों को अच्छी तरह सुखाना चाहिए। इसके बाद दूध की जाँच करके उसके अनुसार उपचार करें।

ukV & दूध निकालने के बाद सुरक्षा के लिए हर समय कोरसोलीन (Kohrosolin-TH)–1 मि.ली. और पानी 150 मि.ली. के घोल में बारी–बारी से प्रत्येक थन (Teat) को डुबायें।

- Fkuyk jkx e ,UVhck;Vhd का प्रयोग किया जाता है जैसे–एम्पीसिलीन, जेन्टामाइसीन, क्लोक्सासिलीन, एमौक्सीसिलीन, स्ट्रेप्टोपेनिसिलीन, औक्सीटेट्रासाइक्लीन, टेट्रासाइक्लीन कानामाइसीन (कानसीन Kancin) मोक्सेल (Moxel), क्लोजाम्प (Kloxamp), वैक्सीवेट (Baxivet), हिपेनॉक्स (Hipenox) इत्यादि का सूई मांस में दे सकते हैं।

➢ थनैला प्रभावित थन में नली द्वारा चढ़ाने की दवाइयाँ (Intramammary infusion)।

## nèk dh deh ;k ,xyfDl;k ¼Agalactia½

पशुओं को निश्चित मात्रा से कम दूध देने को दूध की कमी कहते हैं। यह रोग गायों भैंसों, ऊँटों और भेड़–बकरियों को होता है।

dkj.k & स्वास्थ्य की कमजोरी, अच्छे चारे–दाने की कमी, किसी रोग से प्रभावित होने पर, थन में किसी प्रकार का कष्ट होना, किसी प्रकार का शोक या भय, अविकसित स्तन ग्रन्थि इत्यादि इस रोग के मुख्य कारण हैं।

y{k.k & निश्चित मात्रा से कम दूध, शरीर निर्बल, संक्रामक अथवा असंक्रामक रोग, थन में किसी प्रकार का कष्ट इत्यादि।

## mipkj

1. किसी प्रकार का सवंधित रोग होने पर रोग का उपचार करना चाहिए।
2. चारा–दाना पौष्टिकारक होना चाहिए। दाना के साथ विटामिन और मिनेरल मिक्चर जैसे मिक्सचर या बून ओ मिल्क या एब्लोमीन या मिल्कमिन या मिनल फोर्ट (Minal forte) 20–30 ग्राम दाना में मिलाकर प्रतिदिन खिलाना चाहिए।
3. लेप्टाडेन 10 दिनों तक सुबह–शाम 10–10 गोलियां खिलाकर, फिर 10 दिनों तक 5–5 गोलिया खिलाये।
4. मोरोलौक की 10 गोलियों को दिन में दो बार 10 दिनों तक खिलाया जा सकता है। दूग्ध दान 4 टेबलेट दिन में दो बार व 10 दिनों तक पुनः आधी मात्रा 5 दिनों तक दें।
5. गैलोग या गैलाकोल ग्रेन्यूल्स 25–30 ग्राम प्रतिदिन दाने में खिलाने से लाभ होता है। न्यूट्रीमिल्क– 25–30 ग्राम दाने में मिलाकर प्रतिदिन दें।
6. मिल्क मैक्स 50 ग्राम प्रतिदिन दाने में मिलाकर खिलाने से दूध की कमी को दूर सकते हैं।
7. टोनोमिल्क (Tonomilk)–50 ग्राम दाने में मिलाकर 10 दिनों तक खिलायें। बोवाटील (Bovatil) बड़े पशुओं को 5–10 ग्राम एवं छोटे को 2–5 ग्राम गुड़ या दाना में प्रतिदिन दें।
8. लैक्टोवेट (Lactovet)–25–30 ग्राम दाने में मिलाकर दिन में दो बार 7–10 दिनों तक खिलायें। ओसोपान (Ossopan)–50–100 ग्राम बड़े गाय–भैंस को तथा 20–30 ग्राम भेड़ बकरी को प्रतिदिन दें।
9. वेटिल्क (Vetilk)–50 ग्राम दाने में मिलाकर प्रति दिन दें।
10. काल्डी–12 (Caldee-12)–10 मि.ली. मांस में सुई से प्रतिदिन 1–2 हफ्ते तक दें।
11. काल–डी रूबरा (Cal-D-Rubra)–50 मि.ली. सुबह–शाम पिलायें।
12. औस्टोकैल्सियम बी$_{12}$ (Ostocalcium B$_{12}$) 50–100 मि.ली. दिन में दो बार पिलावें तथा इसके साथ विटाब्लेन्ड ए डी$_3$ एक बोतल में 20 ग्राम मिला दिया करें।
13. मेरीवीट एडी$_3$ या विटाब्लेन्ट एडी$_3$ (Merivite AD$_3$ or Vetablend AD$_3$) 5 ग्राम प्रतिदिन 1 माह तक दें। इसके बाद 2–5 ग्राम प्रतिदिन दें।
14. लैक्टोबुन (Lactoboon) – गाय, भैंस, ऊँट को 25 ग्राम, भेड़ बकरियों 10 ग्राम प्रतिदिन खिलावें। ग्रोमिल्क (Gromilk) 25 ग्राम या 10–15 गोलियां दिन में 2 बार 15 दिनों तक दें।

15. वायोबूस्ट (Bioboost) पाउडर गाय, भैंस, ऊँट को 10 ग्राम और भेड़ बकरियों को 5 ग्राम प्रतिदिन खिलावें।

16. कालडीवेट (Caldivet) या एस्काल (Ascal) 50 मि.ली. प्रतिदिन सुबह–शाम पिलावे। या कैल्सीरॉयल (ब्सबप त्वलंस) बड़ों को 40 ग्राम दाना या पानी में प्रतिदिन दें।

17. यदि स्तन में कोई बीमारी न हो और दूध कम होता हो अथवा किसी कारण वश पशु डरती हो या भयभीत हो या शोकाकुल हो तो पशु कम दूध देती है। ऐसी स्थिति में दूध उतारने के लिए या दूग्ध उठोरण (Induction of lactation) हेतु निम्नलिखित औषधियों का प्रयोग किया जा सकता है–

क. fiV;Vªhu ¼**Pituitrin**½ – यह पिछले पिट्यूटरी ग्रन्थि के हॉरमोन का सूई है। इसका 0.5 से 1 मि.ली. त्वचा या मांस में सूई लगाने से पशु तुरन्त पेन्हान (दूध छोड़ने की स्थिति) ले लेती है। छेमिया (teats) दूध से भर जाती है और पशु दूध उतारने के लिए व्यग्र हो जाती है। यदि देरी हुई तो दूध छेमियों से टपकने लगता है।

ख. vkWDlhVkslhu ¼**Oxytocin**½ – इसका 0–5 से 1–0 मि.ली. त्वचा या मांस में सूई दिया जा सकता है। यह पिछली (चवेजमतपवत) पिट्यूटरी ग्रन्थि एवं कॉरपस ल्यूटियम का एक हॉरमोन है। यह दूध उतारने की यन्त्र कला को उसकाता है। (It actuates the milk let down mechanism) तथा गर्भाशय के पेशियों के संकुचन (Contraction) को उत्तेजीत (Stimulates) करता है। कम दूध देने वाली पशुओं में तथा पेन्हान नहीं लेने वाली पशुओं में इसका सूई लगाने से तुरन्त दूध उतारने की स्थिति हो जाती है। पशु पालक तुरन्त आसानी से दूध निकाल लेता है।

oKkfud vè;;u ls Ikk;k x;k gS fd ऑक्सीटोसीन इन्जेक्शन के अधिक प्रयोग से पशुओं तथा ऐसे दूध पीने वालों पर दुष्प्रभाव पड़ता है तथा खतरनाक होता है जैसे–

### Ik'kqvksa esa

1. रोग अवरोधक शक्ति कम हो जाता है।
2. पशु कमजोर तथा रोग ग्राही हो जाता है।
3. समय से पूर्व मर जाता है।
4. गर्भाशय कमजोर हो जाता है तथा बच्चा पैदा करने की यानी प्रजनन शक्ति का ह्यस हो जाता है।
5. नपुंसकता एवं बांझपन हो जाता है।
6. कैंसर रोग की संभावना बढ़ जाती है।

### euq"; esa

ऐसा दूध पीने वालों में नपुंसकता, बांझपन, जैसी समस्याएं पैदा हो जाती है।

### cPpksa esa

ऐसा दूध पीने से बच्चों के स्वास्थ्य पर बुरा प्रभाव पड़ता है।

अतः इसका प्रयोग करना अच्छा नीं है। इसके प्रयोग के पहले पशु चिकित्सक से परामर्श करना चाहिए।

ग. स्टीलबेस्टो (Stiboestrol) हरेक 100 मिलो शरीर भार पर 7 मि. ग्राम अथवा प्रोजेस्टेरोन (progesterone) 20 मि. ग्राम प्रतिदिन 10–15 दिनों तक मांस में सूई लगायें।

घ. सिक्विल (Siquil) – भयभीत अवस्था में सिक्विल 3–5 मि.ली. बड़े पशुओं को तथा 1–2 मि.ली. छोटे पशुओं को दिया जा सकता है।

ङ अविकसित स्तन ग्रन्थि में प्रेडनिसोलन (Prednisolone) 20 मि. ग्राम या रिसेरपीन (Reserpine) 3 मि. ग्राम प्रतिदिन 3 दिनों तक देने से स्तन ग्रन्थि में विकास और 15–20 दिनों के प्रयोग से दूध श्राव होने लगता है।

## Ik'kvk dk nèk c<kus d fy, uhp dh vk'kfèk;k i;kx dh tk ldrh g &

क हॉरमोन्स जैसे पिटोसीन (Pitocin), पिट्यूट्रीन (Pituitrin), इन्ट्रोजीन (Oestrogen), कृत्रिम थायरॉयड (Thyroid synthetic products)

ख वनस्पति मूल जैसे लेप्टाडीन, मधु, छोआ आदि।

ग रासायनिक जैसे क्लोर प्रोमाजीन (Chlorpromazine), आयोडीन लघु मात्रा में।

घ तुतीया (Copper sulphate) और पोटासियम आयोडायड (Pot, iodide) 0–3 ग्राम या 4.5 ग्रेन हरेक को 30 मि.ली. विशुद्ध जल में घोलकर शिरा में एक के बाद दूसरा तुरन्त सूई देने से 48 घण्टे के बाद दूध की मात्रा में वृद्धि दिखाई पड़ता है। देखें इण्डियन वेटेरीनरी जरनल 52 जनवरी 75 पेज 79।

युवती बकरियों, बाछियों और सूखी गायों में दुग्ध–उठोरण (Induction of lactation in virgin goats, maiden heifers and dry cows) हेतु कृत्रिम इस्ट्रोजन्स (Synthetic oestrogens) का प्रयोग किया जा सकता है, पर इससे हानि भी होती है। अतः इसे प्रोत्साहित नहीं किया जाता।

## Ñf=e jfpr bLVªkstUl ¼Synthetic Oestrogens½

यह कृत्रिम रचित हॉरमोन्स हैं जो प्राकृतिक पदार्थों को कृत्रिम क्रिया से तैयार (Synthesized) किया जाता है। यह अण्डाशय (Ovary) के हॉरमोन्स–इस्ट्रोजन्स (hormones-oestrogens) जैसा प्रभावशाली है। इसके प्रयोग से स्तन, चुची, योनि इत्यादि (Udder, teats, vagina etc.) का विकास होता है तथा प्रचुर मात्रा में दुग्ध उत्पादन (Production of copious lactation) होता है। परन्तु, इससे हानि भी होती है।

gkfu;k (Disadvantages) – कामास्कत (Nymphomania) यानी अति स्त्रीमद (Excessive sexual desire) हो जाती है। पशु अधिक समय तक गर्म रहती है तथा वारम्बार पाल (Mating) होता है। कई एक अण्डरज (Ovum) का विकास होता है तथा बड़ा कोष्ट (Cyst) बन जाता है इत्यादि।

जैसाकि स्टीलबेस्ट्रोल या हेक्सोस्ट्रोल आदि (Stillbaestrol or Hexoestrol etc.)

क) ;qorh cdfj;k e & प्रयुचर दुग्ध उत्पादित होता है (Copious lactation is produced in virgin goats)

ख) ;qorh ckfN;k ;k l[kh xk;k e & अत्याधिक दुग्ध उठोरित होता है (Plentiful lactation is induced in maiden heifers or in dry cows)

Ik;kx & दाना या पानी के साथ खिलाया या पिलाया जा सकता है या त्वचना में बैठाया (Subcutaneous implantation) या सूई अधिक मात्रा (Very high dose) में लगाने से अच्छा फल (Result) मिलता है। मात्रा की कमी या अधिकता से असफलता (थ्यसनतम) हो सकता है। सभी पशुओं में लाभ नहीं भी मिल सकता है।

ek=k & बकरियों में 5 मि. ग्राम या अधिक।
छोटी गायों या बाछियों में 10 उह या अधिक।
बड़ी गायों में 20 मि. ग्राम या अधिक।

## lØked jksxksa ls cpko rFkk jksdFkke ¼Prevention and control of Infectious and contagious diseases½

पशुओं में संक्रामक रोग फैलने से अत्याधिक हानि होती है। इसका महामारी रूप अति भयानक होता है। ऐसी स्थिति में अतिशीघ्र उपाय करना चाहिए अन्यथा अनेक पशु मर जाते हैं। अतः समय से पहले इसका बचाव तथा रोकथाम करना चाहिए।

### lØked jksx ls cpus dk mik;

1- iFDdj.k (Isolation)

   i) बीमार पशुओं को (Sick animals)

   iI) स्नहेहात्मक पशुओं को (Suspected animals)

   iii) स्वस्थ पशु को (Uinfected or healthy animals)

2- 'ko dk fucVkjk (Disposal carcasses)

3- Ik'kq LFkku ,oa lkeku dk lkQ&lQkbZ ,oa 'kqf)dj.k (Disinfection of animals place and their contact materials)

4- jksx dh lwpuk (Information regarding disease)

5- Vhdkdj.k (Vaccination)

6- oSDlhu vkSj ,UVhlhje (Vaccine and Antiserum)

### 1- iFkDdj.k ¼Isolation½

i) jksxh Ik'kqvksa dks (Sick animals) – रोगी पशुओं को स्वथ्य पशुओं से तुरन्त अलग कर देना चाहिए तथा एक किनारे रखकर उसके देख भाल का समुचित प्रबन्ध अलग से करना चाहिए। रोगी पशुओं के खाने पीने का बर्तन, चारा–दाना और पशु सेवक इत्यादि को अलग रखना चाहिए। स्थ्वस्थ पशुओं के संसर्ग में कुछ भी नहीं आना चाहिए। रोगी पशुओं को सर्दी, गर्मी और वर्षा से बचाव करना चाहिए। रोगी स्थान के दरवाजे पर फिनाइल, डेटाल आदि का घोल रखना चाहिए। यदि कोई व्यक्ति रोगी पशुओं को देखने जाय तो उसे अपने जूते के तलवे, छड़ी का निचला भाग इत्यादि उस घोल में डूबाकर जाना और जाना चाहिए। इससे रोग का जीवाणु एक जगह से दूसरी जगह नहीं फैल सकेगा। जबतक रोग अच्छा न हो जाये तबतक रोगी को उस स्थान से नहीं हटाना चाहिए।

ii) lUgsgkRed Ik'kqvksa dks (Suspected animals) – पशुओं में बीमरी का संदेह होने पर संन्हेहात्मक पशुओं को स्वस्थ पशुओं से अलग कर देना चाहिए। इसके खाने–पीने का प्रबन्ध अलग से करना चाहिए तथा अच्छा देख भाल करना चाहिए। सुबह–शाम उसका तापमान लेना चाहिए तथा उसके आवरण पर निगरानी रखनी चाहिए।

iii) LoLFk Ik'kqvksa dh (Uninfected or healthy animals) & सभी स्वस्थ पशुओं को रोगी पशुओं से अलग कर कहीं दूसरी जगह पर रखना चाहिए। इन पशुओं पर कड़ी निगरानी रखते हुए सुबह शाम देखना चाहिए। यदि उसमें कोई सुस्त, कम खाना, जुगाली नहीं करना, बुखार आदि हो तो उसे तुरन्त अलग कर देना चाहिए तथा उसका समुचित प्रबन्ध करना चाहिए।

## 2- Ik'k&'ko dk fucVkjk ¼Disposal of carcasses½

पशु–शव का निबटारा–मृत पशुओं का शव इधर उधर नहीं फेंकना चाहिए। बल्कि गाँव के बाहर गढ़ा खोदकर उसमें गाड़ देना चाहिए। शव को गाड़ने पर उसके ऊपर से चूना छिड़क देना चाहिए जिससे कीटाणुओं का नाश हो जाय। एन्थ्रैक्स से मरे पशुओं को गाड़ने पर सल्फ्यूरिक एसिड (Sulphuric Acid) बालू में मिलाकर ऊपर से डाला जाता है। इसके अलावा अन्य रासायनिक पदार्थ भी प्रयोग में लाया जा सकता है। जैसे–कौरोसीभ सब्लीमेट (Corrosive sublimate), एसिड कार्बोलीक (Acid Carbolic), क्लोराईड ऑफ लाइम (Chloride of lime), खाने वाला चूना, नमक इत्यादि। गढ़ा इतना गहरा होना चाहिए जिससे कि कुत्ते या गीदड़ उस शव को गढ़े से बाहर न निकाले सकें। यदि यह सम्भव नहीं हो तो शव को लकड़ी आदि के साथ आग लगाकर जला देना चाहिए।

मृत पशु के नाक, मुँह या किसी अन्य अंग से यदि किसी प्रकार श्राव बहता हो तो उसमें कीटाणुओं के रहने तथा बीमारी फैलने की आशंका रहती है। अतः रूई या सन अथवा पटुआ को फिनाईल या डेटाल के घोल में भिंगोकर उस श्राव को बन्द कर देना चाहिए क्योंकि शव को ले जाते समय रास्ते में श्राव के गिरने से बीमारी फैलने का भय रहता है। शव को घसीट कर नहीं ले जाना चाहिए। उसे टांग कर अथवा बैलगाड़ी पर लादकर गाड़ने के स्थान तक ले जाना अच्छा है। यदि पशु पिल्ही रोग यानी ऐन्थ्रैक्स से मरा हो तो किसी भी हालत में नहीं खोलना चाहिए बल्कि शव को गाड़ देना चाहिए या तो जला देना चाहिए। ऐसा नहीं करने पर रोग फैलने का भय बना रहता है।

## 3- Ik’k LFkku dh lQkbl vkj 'kf) ;k jkxk.kuk’ku ¼Disinfection of animal and their contact materials½

क) Ik’kvkk dk LFkku & पशुओं के रहने का स्थान प्रतिदिन भली–भांति साफ होना चाहिए। कहीं भी गन्दगी नहीं रहना चाहिए। हो सके तो शाम को भी झाडू लगा देना चाहिए। घर आँगन को कीटाणु नाशक दवा जैसे फिनाईल, ब्लीचिंग पाउडर, डेटाल, चूना इत्यादि के घोल से धोकर साफ एवं शुद्ध करना चाहिए। दीवालों को चूना या मिट्टी से पोतवा देना चाहिए। चूने में कार्बोलिक एसिड या कौरोसीभ सब्लीमेट भी मिलाया जा सकता है।

ख) chekjh dk xkoj] e=] fcNkou bR;kfn & बीमारी का गोबर, मूत्र, कूड़े करकट, बिछावन का घास पात पुआल आदि सुबह में साफ कर देना चाहिए और इधर–उधर नहीं फेंकना चाहिए बल्कि कहीं दूर एक जगह गड्ढा बना कर डाल देना चाहिए और उसमें आग लगाकर जला देना चाहिए। हो सके तो उस स्थान की एक फुट मिट्टी हटाकर उसमें चूना मिलाकर किसी दूर स्थान पर गाड़ देना चाहिए। उस जमीन को करीब एक माह तक सूखने देना चाहिए।

ग) [kku ihu dk crlu & यदि खाने का नाद मिट्टी का हो तो उसे तोड़ देना चाहिए और उसमें चूना मिलकर गाड़ देना चाहिए। यदि खाने पीने का बर्तन सिमेंट या लकड़ी का हो तो गर्म पानी में कीटाणुनाशक दवा मिलाकर रगड़–रगड़ कर साफ करना चाहिए। यदि लोहे का हो तो आग में जलाकर शुद्ध किया जा सकता है।

बीमारी के कीटाणुओं को नष्ट करने के लिए रासायनिक के अलावा सूर्य की ताप, अग्नि और खौलता हुआ पानी प्रयोग में लाया जा सकता है। इसके स्थानों एवं खाने पीने के बर्तनों की शुद्धि की जाती है।

## 4- lØked jkx dh lpuk nuk ¼Information regarding disease½

संक्रामक रोगों के रोकथाम के लिए सरकार की ओर से मुफ्त में या कुछ शुल्क लेकर पशुओं को टीका लगाने की व्यवस्था है। सभी पशुओं को टीका लगवा देना चाहिए। महामारी से बचने के लिए प्रत्येक साल बरसात शुरू होने के पहले सभी पशुओं को गलाघोंटू (HS) लंगड़ा (B.Q) और ऐन्थ्रैक्स (Anthrex) रोग का टीका लगवा देने से बीमारी का भय नहीं रहता है। सरकार की ओर से जब कभी टीका लगाया जा रहा हो तब पशु पालकों से टीका लगवा लेना चाहिए। टीका दो प्रकार का होता है जैसे मसूरी लस और प्रतिलसी (वैक्सीन और एन्टी सीरम Vaccine and Anti-serum) संक्रामक रोग से बचने के लिए वैक्सीन और एन्टी सीरम का प्रयोग किया जाता है। इससे पशुओं के शरीर में रोग मुक्ति का संचार होता है।

# तटवर्ती जलवायु में जापानी क्वेल (बटेर) पालन

Mk- ch-d- Lokb[1]

जापानी बटेर *(कोटुर्निक्स कोटुर्निक्स जपोनिका)* एविस वर्ग, फेसिथनिडे परिवार और कोटुर्निक्स वंश से संबंध रखती हैं। ये सहिष्णु होती हैं और इन्हें संभालना आसान होता है तथा विविध पर्यावरणों को आसानी से अपनाने में सक्षम होती हैं। इनके आवास की आवश्यकताएं कम और अत्यधिक सरल होती हैं। यह लघु अन्तराल अवधि के पीढ़ी और अण्डे देने की उच्च दर के साथ तीव्रता से बढ़ने वाला पक्षी हैं। यह कम आयतन, कम वजन और लघु अवधि के पीढ़ी के कारण अण्डे और मांस के स्रोत के रूप में अधिक स्वीकार्य होता है। व्यापारिक स्तर की बटेर ने जापान, हांगकांग, सिंगापुर और फ्रांस जैसे घनी आबादी वाले अनेक देशों में कुक्कुट पालन के उत्पादन की गतिविधियों में बहुत ही महत्वपूर्ण स्थान बना रखा है। मादा बटेर नर बटेरों से भारी होती हैं। मादा बटेर की पहचान उसके लम्बे और धब्बेदार पंखों के साथ उसके कंठ और ऊपरी आवक्ष पर काली चित्तियों से की जाती है। नर बटेरों को रस्टी ब्राऊन (जंगनुमा भूरा) और आवक्ष पर पंख होते हैं। लैंगिग रूप से सक्रिय नर बटेरों के एक क्लोआकल ग्रंथि, मुख के ऊपरी सिरे पर स्थित एक कंदीय रचना होती है जिससे सफेद सा झागदार पदार्थ निकलता है।

मांस और अंडे के लिए मुर्गी पालन व्यवसाय में उत्पादन की लागत बढ़ने के कारण किसानों की उत्तरजीविता के लिए कुछ वैकल्पिक और समान प्रतिस्पर्धा वाला पालन अत्यन्त आवश्यक हो गया है। इसके अतिरिक्त, फास्ट फूड की मांग में आश्चर्यजनक रूप से वृद्धि हुई है। ऐसी स्थिति में इन कुक्कुट पालकों के लिए बटेर पालन उन किसानों के लिए यह एक आदर्श आवरण सिद्ध हो सकता है, जो विविधता के माध्यम से अपना लाभ बढाने की इच्छा रखते हैं। जापानी बटेरों के निम्नांकित अनुपम अभिलक्षणों ने उन्हें कुक्कुट पालन की अन्य प्रजातियों के पालन से अधिक महत्वपूर्ण बना दिया है।

## tkikuh cVjks ds dqN egRoiw.kZ vfHky{k.k

1. जापानी बटेर का वजन 10–11 ग्राम के अण्डे से हैचिंग (अंडे सेने) के समय 8–9 ग्राम होता है।
2. जापानी बटेर का 5–6 सप्ताह की आयु पर औसत शारीरिक भार 180–200 ग्राम होता है तथा वयस्क का वजन 200–250 ग्राम होता है।
3. मादा बटेर नर बटेरों से भारी होती हैं।
4. मादा बटेर की पहचान लम्बे और धब्बेदार पंखों के साथ उसके कंठ और ऊपरी आवक्ष पर काली चित्तियों से की जाती है। नर बटेरों के कंठ रस्टी ब्राऊन (जंगनुमा भूरा) और आवक्ष पर पंख होते हैं।
5. लैंगिंग रूप से सक्रिय नर बटेरों के एक क्लोआकल ग्रंथि, मुख के ऊपरी सिरे पर स्थित एक कंदीय रचना होती है, जिससे सफेद झागदार पदार्थ निकलता है।
6. बहुत तीव्र वृद्धि तथा लघु पीढ़ी अन्तराल के कारण प्रतिवर्ष 3–4 पीढ़ी पूरी कर लेते हैं।
7. बहुपुंज अंडा सेना : 280–300 अंडे प्रतिवर्ष।
8. अगेती लैंगिंग परिपक्वता : 6–7 सप्ताहं
9. न्यूनतम फर्श वाले स्थान की आवश्यकता अर्थात एक ब्रायलर/लेयर चूजे के रहने के लिए जितनी जगह की आवश्यकता होती है उसमें 8–10 बटेर रखी जा सकती हैं।
10. कम चुग्गे (चारे) की आवश्यकता : 25–30 ग्राम/बटेर/दिन।

---

[1] Ikèkku oKkfud (कुक्कुट विज्ञान), केन्द्रीय पक्षी अनुसंधान संस्थान का क्षेत्रीय केन्द्र, भुवनेश्वर, ओड़ीशा

11. स्वादिष्ट खाद्य के लिए अगेती विपणन आयु : 5–6 सप्ताह।
12. अंडे और मांस का उच्च पौष्टिक मूल्य।
13. बटेर के अंडे में मुर्गी के अंडे की अपेक्षा कॉलेस्ट्रॉल का अंश कम होता है।
14. बटेर के मांस में वसा और कॉलेस्ट्रॉल का अंश कम होता है तथा यह शिशुओं, बच्चों, वयस्कों, बुजुर्गो तथा जो अपना वजन घटाना चाहते हैं, उनके लिए एक आदर्श खाद्य है।

## Å"ek;u vkj vMk luk ¼gfpx½

gfpx d fy, p;fur cVj d vM

हैचिंग बटेर के अंडों को 10–30 सप्ताह की आयु के बीच के प्रजनकों से संग्रह किया जाना चाहिए। अंडों को संग्रह करने तथा सार–संभाल में सावधानी बरतनी चाहिए, क्योकि वे पतले खोल वाले होते हैं तथा आसाानी से टूट सकते हैं। अधिकतम उर्वरता के लिए जनकों की आयु 12–24 सप्ताह की होनी चाहिए। एक नर को 1–3 मादाओं से संसर्ग करना चाहिए तथा नरों और मादाओं के मिलन के 4 दिन बाद अंडों को हैचिंग के लिए संग्रह करना चाहिए। अंडों को मजबूत खोल और समान आकार के साथ साफ और सामान्य होना चाहिए। अंडों को फोर्मलडेहाइड गैस (प्रत्येक 2.8 क्यूबिक मीटर वायु स्थल के लिए 40 प्रतिशत व्यापारिक फोर्मलिन का 40 मि.ली. तथा पोटैशियम परमैगनेट के 20 ग्राम का मिश्रण) के साथ 10 से 20 मिनट तक धूमन करके असंक्रमित करना चाहिए तथा 13 डिग्री सें. और 75 प्रतिशत की सापेक्ष आर्द्रता पर प्रशीतलक में एक सप्ताह से अधिक भण्डारित नहीं करना चाहिए। बटेर के अंडों के लिए ऊष्मायन की अवधि लगभग 18 दिन की होती है।

जननक्षम अंडों को चौड़े सिरे नीचे और तंग सिरे ऊपर की तरफ पात्र में रखा जाता है, नहीं तो अंडे सेने की क्षमता घट जाती है। अंडों को स्वचालित घुमाव युक्त ऊष्मायक में रखे जाते हैं। ताकि उनको दिन में कम से कम 8 बार घुमाया जाये। 18 दिनों के बाद ऊष्मायन के बाद घुमाने की जरूरत नहीं है। अगर एक ही मशीन में ऊष्मीकरण और हैचिंग की जाती है, तो अंडों को 15 दिन तक ऊपरी ट्रेज में तथा 3 दिन निचली ट्रेज में रखा जाता है। ऊष्मीकरण का तापमान 99.5 डि.फॉ. से 100.5 डि.फॉ. के बीच होनी चाहिए।

cVj d ,d fnu d ptk dh gfpx

आर्द्रता के मापन के लिए शुष्क और गीले बल्ब वाले थर्मामीटरों का उपयोग करते हैं। हैचिंग अवधि के दौरान शुष्क बल्ब की रीडिंग 98 डिग्री फा. और गीले बल्ब की रीडिंग 92 डिग्री फॉ. होना चाहिए। बटेर के चूजों को 18वें दिन तक सेना चाहिए।

बेहतर हैचिंग और स्वस्थ चूजे प्राप्त करने के लिए ऊष्मानियंत्रक और हैचर साफ सुथरे और सूक्ष्मजीवों से मुक्त होने चाहिए तथा उन्हें उचित रूप से कार्य करना चाहिए। ऊष्मानियंत्रक में अंडे रखने से पहले ऊष्मानियंत्रक की किसी भी खराबी के लिए

सम्पूर्ण जांच कर लेनी चाहिए। रोग फैलाने वाले जीवों को मारने के लिए उन्हें उचित रूप से साफ, असंक्रमित और धूम्रीकरण करना चाहिए। अंडों को भण्डारण से पहले और हैचर में अंडों को स्थानांतरित करने के बाद सफाई, असंक्रमण और धूम्रीकरण की प्रक्रिया रोगों के फैलने के आयतन को कम करती है। घूर्मन सामान्यतः फार्मेल्डीहाइड गैस के साथ किया जाता है जिसमें पोटैशियम पर्मेगनेट को एक गिलास या मिटटी के पात्र में रख सकते हैं तथा उस पर फार्मेलीन डाल देते हैं। धूमन का कार्य अधिमानतः कार्य दिवस के अंत में बंद कमरें में किया जाता है।

## cfMx vkj ikyu

बटेरों को या तो पिंजरों या फर्श या दोनों के संयोजन में पाला जा सकता है। इसलिए पालन पद्धतियों के विकल्पों में पहला विकल्प गहन बिछाली में ब्रूडिंग (0–3 सप्ताह), पालन (4–8 सप्ताह) और अंडे सेने (8 सप्ताह के आगे), दूसरा विकल्प पिंजरों में ब्रूडिंग, पालन और अंडे सेना तथा तीसरा विकल्प बैटरी ब्रूडर में ब्रूडिंग तथा गहन बिछाली में पालन और अंडे सेना है। अधिकतम पालन वातावरण तथा फर्श, फीडर और जल स्थल की आवश्यकताएं सारणी–3 में दर्शायी गयी हैं



cVj dk pwtk dh fiatjk cfMx

lkj.kh - 1% rkieku] vknzrk vkj LFkku dh vko';drkA

| | LVkVj | xkoj | y;j@chMj |
|---|---|---|---|
| तापमान (डिग्री से.) | 37–38 | 21–22 | 21–22 |
| सापेक्ष आर्द्रता (प्रतिशत) | 60–65 | 55–60 | 55–60 |
| फर्श का क्षेत्रफल (वर्ग से.मी./पक्षी) | 75 | 110 | 150 |
| रेखिक फीडर क्षेत्र (लिन. से.मी./पक्षी) | 2 | 2.5 | 3 |
| रेखिक जल क्षेत्र (लिन. से.मी./पक्षी) | 1 | 1.5 | 2 |

बटेर के चूजों को 2–3 सप्ताह की आयु तक 24 घंटे प्रकाश में रखा जाता है जिसे 3 सप्ताह के अन्त में घटा कर 12 घण्टे कर दिया जाता है और उसके बाद 5 सप्ताह की आयु तक 12 घण्टे की प्रकाश अवधि उपायुक्त होती है। अण्डे सेने वाली बटेरों के लिए प्रकाश की अवधि लगभग 14–16 घण्टे सिफारिश की जाती है।

संतोषजनक परिणाम के साथ अंडे सेने और पालन वाली बैटरी और फर्श प्रणाली दोनों का प्रयोग किया जा सकता है। तथापि, 3 सप्ताह की आयु तक चूजे आकार में छोटे होने के कारण बैटरी द्वारा अंडे सेने के मुकाबले फर्श पर अंडे सेने को बेहतर माना जाता है। फर्श को वरीय रूप से नालीदार कागज से ढकना चाहिए ताकि उन्हें बेहतर आधार मिल सके, चूंकि आरम्भ में अधिक मृत्युदर गंदे (स्ट्रेडलड) पैरों की कारण होती है। प्रारम्भ में तापमान 37 डिग्री से. होना चाहिए और इसे 3 सप्ताह के अन्त तक धीरे–धीरे कम (प्रत्येक चार दिन में 3 डिग्री से. दर पर) कर देना चाहिए। बेहतर कार्यक्षमता के लिए बैटरी ब्रूडर में प्रत्येक चूजे को मंडलाने (हॉवर) के लिए 75 वर्ग सें. मी. और दौड़ने के लिए 7 वर्ग से. मी. स्थान दिया जाता है। इस अवधि के दौरान फीडर और जल स्थान की आवश्यकता क्रमशः 2–3 से. मी. और 1.15 से. मी. होती है (सारणी–1)। फर्श, फीडर और जल के स्थान को आयु बढ़ने के साथ बढ़ा देना चाहिए। नरों और मादाओं को अलग–अलग पालना चाहिए। मादाओं को लगभग 6 सप्ताह की आयु पर पिंजरों में सेने के लिए रख देना चाहिए। पहले 48 घण्टों के लिए लगातार प्रकाष का प्रबंध करना चाहिए। यदि पक्षी जल्दी बड़े हो जाते हैं तो इसे जारी रखा जा सकता है। अन्यथा, बढ़ने की अवधि के दौरान

12 घंटे का प्रकाश और बाद में 12 घंटे का अन्धेरा दिया जा सकता है। बटेर के ब्रायलरों को लगभग 5–6 सप्ताह की आयु होने पर बाजार में भेजा जाता है। विपणन से पूर्व कम से कम 7 से 10 दिन आठ घंटे का प्रकाश और 16 घंटे के अन्धेरा बटेर के ब्रायलरों की दशा सुधारने में सहायक सिद्ध हुई।

## vkokl

आवास की आवश्यकताएं लघु व सरल हैं। यह लघु पीढ़ी अन्तराल और अंडे देने की उच्च दर के साथ तेजी से बढ़ने वाला पक्षी है। चूंकि, स्थानीय परिस्थिति में उच्च तापमान और उच्च आर्द्रता पाया जाता है, खुले प्रकार के कुक्कुटशालाओं को बेहतर संवातन के लिए निर्माण करने पर जोर दिया जाता हैं।

## ?kj dk [kkdk

घर की लम्बाई उचित संवातन और कम ऊष्मा के लिए पूर्व से पश्चिम की ओर होनी चाहिए।

## vkdkj

लिटर प्रणाली में, या तो शेड छोटा हो जिसमें काफी संख्या में पक्षियों को रखा जा सके या बड़े शेड के हिस्से करके छोटे कक्ष बना दें। पिंजरा प्रणाली में आकार का कोई खास प्रभाव नहीं है। हवा के अच्छे आवागमन के लिए शेड की चौड़ाई 9 मीटर से ज्यादा नहीं होनी चाहिए।

## Nr

पक्षियों को धूप व वर्षा से बचाने के लिए 3–4 मीटर चौड़ी आवास में एक शेड टाइप छत तथा 1.5 मीटर चौड़े छज्जे की व्यवस्था किए जाने की सिफारिश की जाती है। घर की चौड़ाई 9 मीटर कोने पर 1.5 मीटर छज्जे के साथ त्रिकोणिका आकार के छत की सिफारिश की जाती है। नालीदार एस्बेस्टोस, नारियल ताड़ पत्ता छप्पर या नालीदार जस्सीकृत लोहे की चादरों का उपयुक्त सहारे के साथ छत की सामग्री के रूप में उपयोग किया जा सकता है।

## nhokj

दोनो तरफ की दीवारों की ऊंचाई 2.5–3.0 मीटर की होनी चाहिए। बीच की ऊंचाई घर की चौड़ाई पर निर्भर होती है और यह 4 से 5 मीटर हो सकती है। दीवारों का निचला भाग सख्त (ईंट या पत्थर) होना चाहिए तथा शेष भाग कोण इस्पात, बांस या लकड़ी के खम्भों पर तारों की जाली (1 इंच x 1 इंच) का हो सकता है।

## Q'k

शेड का फर्श भू–स्तर से 2–3 फिट ऊंचा होना चाहिए तथा उचित जल निकास और स्वछता को बनाये रखने के लिए सीमेंट और रोड़ी से बना हो।

## njokt

घर की लधु दीवारों में लम्बी एक्सिस के दोनों सिरों पर दो दरवाजे (1.2 मी. चौड़ी और 2 मीटर ऊंची) होनी चाहिए। कक्ष में दरवाजे (0.7 मी. चौड़ी और 1.8 मीटर ऊंची) लगे होने चाहिए। ये दरवाजे कार्यशील मार्ग की ओर खुलने चाहिए।

## idk'k

प्रकाश की स्त्रोत फर्श से लगभग 2 मीटर की ऊंचाई पर होनी चाहिए और इन्हें ढीले लटके हुए नहीं होनी चाहिए।

बटेरों को बहुतलीय/एकल तलीय पिंजरों में पाला जा सकता है। पिंजरे 120 x 60 सें. मी. आयताकार और 25 सें.मी. की ऊंचाई के होनी चाहिए। व्यापारिक उद्देश्य के लिए इस पिंजरे में 20 से 30 बटेर पाली जा सकती हैं।

cVjksa dk Q'kZ ij ikyu

## vkgkj ,oa izcU/ku

बटेरों को दक्षतापूर्वक एवं किफायती ढंग से आहार देने के लिए उन्हें स्टाटर (0–3 सप्ताह), ग्रोवर (4–8 सप्ताह) तथा लेयर या ब्रीडर (8 सप्ताह से ऊपर) के रूप में वर्गीकृत किया जा सकता है। यह उनकी वृद्धि दर, आहार उपयोग की दक्षता तथा उत्पादन और प्रजनन क्षमता पर निर्भर करता है। प्रारम्भिक अवधि सबसे नाजुक अवधि होती है और इसमें विशेष प्रबन्धन और आहार देने की सावधानी बरतने की आवश्यकता होती है। किशोर चूजे प्रति यूनिट आहार का उपयोग जीवित भार की काफी वृद्धि के लिए उपयोग करते हैं। इसलिए, बटेर को 3 सप्ताह की आयु तक आहार देने का विशेष महत्व होता है, इनकी खुराक में संतुलित और अधिक पोषक तत्व स्तर की आवश्यकता होती है। बटेरों की पौष्टिक आवश्यकता और व्यावहारिक राशनों को सारणी–2 और 3 में प्रस्तुत किया है।

lkj.kh - 2% tkikuh cVsjksa dh [kjkd esa iks"kd rRoksa dk 0;kogkfjd Lrj

| | LVkVZj ¼0&3 lIrkg½ | Xkzksoj ¼4&8 lIrkg½ | ysj@czhMj ¼8 lIrkg ds ckn½ |
|---|---|---|---|
| चयापचयी ऊर्जा (Kcal/के जी) | 2,750 | 2,750 | 2650 |
| प्रोटीन (प्रतिशत) | 25727 | 22–24 | 20–22 |
| कैल्शियम (प्रतिशत खुराक) | 1.0 | 0.8 | 3.0 |
| फॉस्फोरस, उपलब्ध (प्रतिशत खुराक) | 0.45 | 0.45 | 0.45 |
| लाइसिन (प्रतिशत खुराक) | 1.40 | 1.24 | 0.73 |
| विटामिन–ए. (आई.यु./कि.ग्राम खुराक) | 10,000 | 10,000 | 10,000 |
| विटामिन–डी. (आई.यु./कि.ग्राम खुराक) | 1,250 | 1,250 | 1,250 |
| विटामिन–ई. (आई.यु./कि.ग्राम खुराक) | 50 | 50 | 50 |
| विटामिन–के. (आई.यु./कि.ग्राम खुराक) | 3 | 3 | 3 |

lkj.kh - 3% tkikuh cVsj ds pwtksa ds fy, vkgkj dk la;kstu ¼ifr'kr vkgkj½

| Øe la- | la?kVd | A | AA |
|---|---|---|---|
| 1 | मक्का का पावडर | 50.00 | 45.00 |
| 2 | जी. एन. सी. | 32.00 | 32.00 |
| 3 | मछली चूर्ण | 12.00 | 12.00 |
| 4 | गेहूं का चोकर | 4.40 | 4.40 |
| 5 | चावल की कणियां | – | 5.00 |

| Øe l- | l?kVd | A | AA |
|---|---|---|---|
| 6 | डाइकैल्शियम फॉस्फेट (डी.सी.पी.) | 0.56 | 0.56 |
| 7 | साधारण नमक | 0.40 | 0.40 |
| 8 | लाइसिन | 0.24 | 0.24 |
| 9 | मेथियोनिन | 0.10 | 0.10 |
| 10 | विटामिन और खनिज मिश्रण | 0.30 | 0.30 |
| 11 | ;kx | 100 | 100 |

¼[k½ tkikuh cVsj dh xzkoj dh fy, vkgkj dk l;ktu ¼ifr'kr vkgkj½

| Øe l- | l?kVd | A | AA |
|---|---|---|---|
| 1 | मक्का का पावडर | 48.00 | 45.60 |
| 2 | जी.एन.सी. | 30.00 | 30.00 |
| 3 | मछली चूर्ण | 10.00 | 10.00 |
| 4 | गेहूं का चोकर | 10.28 | 10.18 |
| 5 | चावल की कणियां | – | 2.40 |
| 6 | साधारण नमक | 0.40 | 0.40 |
| 7 | डाइकैल्षियम फॉस्फेट (डी.सी.पी.) | 0.89 | 0.94 |
| 8 | लाइसिन | 0.14 | 0.19 |
| 9 | विटामिन और खनिज मिश्रण | 0.29 | 0.29 |
| 10 | ;kx | 100 | 100 |

¼x½ tkikuh cVsj dh ys;j dh fy, vkgkj dk l;ktu ¼ifr'kr vkgkj½

| Øe l- | l?kVd | A | AA |
|---|---|---|---|
| 1 | मक्का का पावडर | 50.00 | 45.00 |
| 2 | जी.एन.सी. | 30.00 | 30.00 |
| 3 | मछली चूर्ण | 10.00 | 10.00 |
| 4 | गेहूं का चोकर | 3.25 | 3.25 |
| 5 | हरे काजू का अपशिष्ट | – | 5.00 |
| 6 | डाइकैल्सियम फॉस्फेट (डी.सी.पी.) | 1.14 | 1.14 |
| 7 | चूना पत्थर का पावडर | 4.92 | 4.92 |
| 8 | साधारण नमक | 0.40 | 0.40 |
| 9 | विटामिन और खनिज मिश्रण | 0.29 | 0.29 |
| 10 | ;kx | 100 | 100 |

## vMk dk mRiknu

जापानी बटेर, मुर्गियों की तुलना में छोटे अंडे देते हैं। परन्तु इनकी लेयर्स बहुपुंज होती है। पहले अंडे तक बटेरों की औसत आयु लगभग 50 दिन होती है तथा पूर्ण अण्डे सेने की क्षमता लगभग 70 दिन में होता है। वे अनुकूलीय प्रबंधन

की दशाओं के अन्तर्गत प्रतिवर्ष औसत 240–250 या इससे अधिक अंडा उत्पादन के साथ लम्बी अवधि तक अंडे देती हैं। बटेर के लगभग 70 प्रतिशत अंडे शाम 3 बजे से 5 बजे के बीच मिलते हैं तथा शेष अन्धेरे में मिलते हैं। यद्यपि, अंडे का वजन लगभग 10–12 ग्राम होता है जो मादा बटेर के शरीर भार का 5–7 प्रतिशत होता है। चिकन के विपरीत अनुक्रम में इनका पहला अंड़ा बाद वाले अंडों से छोटा होता है।

## i t uu

घरेलू बटेर वर्षभर प्रजनन करती हैं। हैचिंग अंडों का संग्रह और सार–संभाल करते समय विशेष सावधानी बरतनी चाहिए, क्योंकि उनके खोल पतले होते हैं और वे आसानी से टूट जाते हैं। अधिकतम उर्वरता के लिए अनके जनको को 12–24 सप्ताह की आयु का होना चाहिए। एक नर को 1–3 मादाओं से मिलन कराना चाहिए तथा नरों को मादाओं से परिचित होने के 4 दिन बाद अंडो का हैचिंग के लिए संग्रहित करना चाहिए। उच्चतर मिलन अनुपात के साथ कम प्रजनन क्षमता हो सकती है। 6 माह से अधिक आयु के होने पर उनकी प्रजनन क्षमता घटने लगती है।

अंडों की अंडा सेने की क्षमता मादाओं की आयु के साथ घटने लगती है। नरों की वीर्यता प्रजनक पर आयु का अधिक असर नहीं होता है। बटेर के अंडों के हैच के लिए लगभग 17 दिन लगती है। बटेर के अंडों की अंडजनन क्षमता भण्डारण के दौरान प्रतिदिन लगभग 3 प्रतिशत की स्थिर दर से कम होती रहती है। जनक स्टॉक की आयु का अंडजनन क्षमता पर सुस्पष्ट प्रभाव पड़ता है। जबकि 12–24 सप्ताह के पक्षियों की अंडजनन क्षमता अधिक होती है।

## Å"ek;u vkj vM t uu

इष्टतम हैचेबिलटी एवं चूजा मृत्यु दर के लिए अंडे सेने भंडारण से पहले 20 मिनट के लिए फॉर्मालिडहैड गैस से धूमित होने चाहिए। अंडे सेने के अंडों को 7–10 दिनों तक 13 डिग्री सें. और 80 प्रतिशत सापेक्ष आर्द्रता पर संग्राहित किया जाना चाहिए। मुर्गियों के इस्तेमाल किए जाने वाले इनक्यूवेटर भी बटेर अंडों के लिए प्रयोग में लाया जा सकता है। लेकिन उनकी सेटिंग ट्रे को बटेर के छोटे आकार के अंडे के लिए संशोधित किया जाना चाहिए। अंडों को चौहदवें दिन या उससे पहले हेचर में स्थानान्तरित करना चाहिए। चूजों को ऊष्मायन के अठारहवें दिन पर निकाल देना चाहिए।

## vkgkj l cèkh j.kuhfr ;k

lkj.kh - 4% [kjkdk dk ijh{k.kkRed l ;k tu ¼ifr'kr½

| l?kVd | Vh 0 | Vh 10 | Vh 20 |
|---|---|---|---|
| पीले कटी हुई मक्का | 50.00 | 48.00 | 46.00 |
| सोयाबीन का चूरा | 29.00 | 27.00 | 25.00 |
| तेल रिहत चावल का चोकर | 11.24 | 10.27 | 9.33 |
| किण्वक शुष्क अन्न | –– | 5.00 | 10.00 |
| डाइकॉल्शियम फॉस्फेट | 1.52 | 1.56 | 1.56 |
| भू–चूना पत्थर | 7.53 | 7.57 | 7.43 |
| साधारण नमक | 0.50 | 0.50 | 0.50 |
| डी. एल.–मैथियोनिन | 0.01 | 0.01 | 0.01 |
| विटामिन मिश्रण क | 0.04 | 0.04 | 0.04 |
| खनिज मिश्रण ख | 0.15 | 0.15 | 0.15 |

Lkkj.kh & 5½ jklk;fud l;ktu dk fo'yi'k.k ¼ifr'kr½

| | | | |
|---|---|---|---|
| शुष्क पदार्थ | 89.9 | 90.3 | 90.9 |
| कच्ची प्रोटीन | 20.80 | 21.40 | 21.50 |
| कच्चा वसा | 3.24 | 2.57 | 2.26 |
| कच्चा रेशा | 6.78 | 8.26 | 9.24 |
| कुल राख | 7.80 | 7.65 | 7.56 |
| एसिड अविलेय राख | 1.79 | 1.47 | 1.55 |

इससे निष्कर्ष निकला कि किण्वक शुष्क अन्न को अंड़ा उत्पादन की कार्यक्षमता और उच्चतर लाभ की अतिरिक्त राशि को प्रभाववित किए विना मक्का, सोयाबीन का चूरा और तेल रहित चावल के चोकर आदि के स्थान पर जापानी बटेर के लेयर्स की खुराक में 5 प्रतिशत के स्तर तक समाविष्ट कर सकते हैं।

यह भी निष्कर्ष निकला कि 0.5 ग्रा./ली. की दर से पीने के पानी के माध्यम से बायोवेट का सम्पूरण देना अंडे के भार, खोल गुणवत्ता, उर्वरता और अंडजनन क्षमता को सुधारने में लाभकारी होता है।

Lkkj.kh - 6½ tkiku cVj ijrk dk fy, 0;kogkfjd vkgkj

| lèkVd ifr'kr | [kjkd&1 | [kjkd&2 | [kjkd&3 |
|---|---|---|---|
| पीली मक्का | 50.00 | 47.50 | 45.00 |
| मूंगफली की खली | 40.00 | 40.00 | 40.00 |
| गेहूं का चोकर | 0.84 | 0.84 | 0.84 |
| काजू के फल का अपशिष्ट | – | 2.50 | 5.00 |
| डाइकैल्सियम फॉस्फेट (डी.सी.पी.) | 1.70 | 1.70 | 1.70 |
| चूना पत्थर का पावडर | 6.30 | 6.30 | 6.30 |
| साधारण नमक | 0.50 | 0.50 | 0.50 |
| एल–लाइसिन एच.सी.एल. | 0.30 | 0.30 | 0.30 |
| डी.एल. – मैथियोनिन | 0.07 | 0.07 | 0.07 |
| खनिज मिश्रण | 0.25 | 0.25 | 0.25 |
| विटामिन मिश्रण | 0.04 | 0.04 | 0.04 |

Lkkfj.kh & 7 ½ jklk;fud l;ktu] 'k"d inkFk vkèkkfjr

| | | | | |
|---|---|---|---|---|
| सी.पी. | 11.5 | 22.30 | 22.6 | 22.8 |
| ई.ई. | 3.7 | 3.45 | 3.06 | 3.97 |
| सी.एफ. | 8.5 | 4.73 | 4.87 | 5.02 |
| टी.ए. | 3.5 | 8.67 | 8.82 | 8.97 |
| ए.आई.ए . | 1.3 | 1.07 | 1.22 | 1.30 |
| सी.ए. | 0.12 | 2.98 | 3.01 | 3.08 |
| कुल पी. | 0.38 | 0.72 | 0.73 | 0.74 |
| एम. ई.', एम.सी.ए.एल./कि.ग्राम | 2.30 | 2.70 | 2.68 | 2.65 |
| आहार की लागत, रू0/कि.ग्राम | 2 | 9.98 | 9.85 | 9.73 |

उपरोक्त परीक्षण के आधार पर यह सुझाव दिया गया है कि काजू के फल के अपशिष्ट को जापानी बटेर के लिए मितव्ययी राशन बनाने के लिए क्रमशः 5 प्रतिशत के दर से मक्का के बदले दिया जा सकता है।

## cVjk dk vkgkj

बटेरों को पालने में अधिक लाभ पाने के लिए किसानों को आहार, आहार देने की प्रक्रिया और आहार देने के सुप्रबंधन पर ध्यान देना चाहिए। बटेर के आहार में अनाज और ऊर्जा स्रोत के रूप में अनाज के उत्पादों को मिलाया जाता है तथा सोयाबीन का चूरा, मूंगफली की खली, सूरजमुखी की खली, मछली का चूरा आदि को क्रमशः पादप और पशु प्रोटीन स्रोत के रूप में दिया जाता है। इसके अतिरिक्त, ऐमीनों एसिड, विटामिनों और खनिजों को विभिन्न प्रकार के स्टॉकों के लिए उनकी न्यूनतम आवश्यकता को पूरा करने के लिए आवश्यक मात्रा में सम्पूरित किया जाता है।

बटेरों के लिए एक संतुलित राशन बनाने के लिए बटेरों की विभिन्न प्रकारों की मात्रात्मक आवश्यकता की, मुर्गी पालन की तरह जानकारी, अधिक विवरण और वास्तविक रूप में उपलब्ध नही है। राष्ट्रीय अनुसंधान केन्द्र (एन.आर.सी.) ने बटेर और ऐल पक्षी की उनके अनुकूल के जलवायु में किए गए कार्य पर बटेर आधारित पोषक तत्व की आवश्यकता की सिफारिश की है। चूजों के लिए उपलब्ध प्रमाण हैं कि शीतोष्ण क्षेत्र के लिए बनाई गई पोषक तत्व की आवश्यकता उष्णकटिबंधीय और उपोष्ण कटिबंधीय क्षेत्रों के लिए पूर्णतः संतोषजनक नहीं हो सकती है। इसलिए एन.आर.सी. द्वारा संस्तुत पोषक तत्व की आवश्यकता भारतीय परिस्थितियों के लिए पूर्ण रूप से संतोषजनक नहीं हो सकती है।

कुक्कुट पालन की पोषक तत्व की आवश्यकता के लिए भारतीय मानक ब्यूरो (बी.आई.एस.) की सिफारिशें भारत में किसानों के लिए अनिवार्य उपाय होते हैं। जबकि यह जापानी बटेरों के लिए उपलब्ध न हों ऐसा प्रर्याप्त डाटा की कमी और इसके व्यापारीकरण के प्रारम्भिक दौर के कारण भी हो सकता है। उपरोक्त बिन्दुओं पर विचार करते हुए अंडे और मांस के विभिन्न उद्देश्यों के लिए बटेर वृद्धि हेतु खुराक मिश्रण के लिए एक उपयुक्त व्यावहारिक फार्मुला मुहैया कराने के लिए गोवा और भारत के अन्य भागों में सघन अनुसंधान के प्रयास किए गए हैं। विभिन्न कृषि–जलवायुवी परिस्थितियों के अन्तर्गत हमारी अनुसंधान उपलब्धि की विभिन्न अवस्थाओं के लिए व्यावहारिक खुराकें सारणी में दी गई हैं।

## vaM dk Hkkfrd vkj jklk;fud l;kstu

बटेर का अंडा आकार में गोलाकार होता है। ये अनेक रंग पैटर्न, गहरे भूरे और सफेद से पाण्डु, प्रत्येक काले, भूरे और नीले रंग के साथ घने चितकबरे होते हैं। बटेर के अंडों के खोल वर्णक ओपोर्फायरिन और गिलिसुबिन होते हैं। अंडे का भार 8 से 11 ग्राम के बीच तथा औसत भार 10 ग्राम होता है। यह मुर्गी के अंडे के आकार में लगभग पांचवां हिस्सा होता है तथा मादा बटेर के शरीर के भार का 5 से 8 प्रतिशत होता है। जबकि कुक्कुट और पेरू पक्षी के अंडे का भार उनके शरीर भार का क्रमशः लगभग 3 प्रतिशत और 1 प्रतिशत होता है। अंडों का रूप, आकार और रंग पैटर्न प्रत्येक बटेर लेयर का लक्षण वर्णन होता है।

बटेर और चिकन के अंडों के भौतिक गुणवत्ता संबंधी लक्षणवर्णन की तुलना करने से पता चला कि शेप इन्डैक्स 76 से 82 तक भिन्न था तथा ऐल्बुमिन और जरदी इन्डाइसिस चिकन के अंडों की तुलना में बटेर में सापेक्ष रूप से अधिक थे। संयुक्त खोल झिल्ली की मोटाई लगभग 0.063 मि. मी. है, जो बटेर और चिकन दोनों के अंडों में लगभग समान है, जबकि खोल की मोटाई (0.19 मि. मि.) मोटे तौर पर चिकन के अंडों से आधी है। इससे सुझाव मिलता है कि बटेर के अंडों को सावधानीपूर्वक संभालना चाहिए।

## pkp dk vyx djuk

बटेरों का 3–4 सप्ताह की आयु पर या नरभक्षण नियंत्रण की आवश्यकता होने पर चोंच अलग हो सकती है। चोंच अलग करने के लिए साधारण नाखून कटर का उपयोग किया जा सकता है। अधिक कटाई से बचना चाहिए ताकि मिलन की समस्याओं और कम प्रजनन क्षमता से बचा जा सके।

## LokLF; izcaèku

बटेर विशेषकर अपने जीवन के पहले दो सप्ताह के दौरान आकस्मिक पर्यावरणीय परिवर्तनों के प्रति बहुत संवेदनशील होती हैं। ब्रूडिंग आयु के दौरान उनकी बेहतर देखभाल की आवश्यकता होती है। उनके जीवन के पहले सप्ताह के दौरान पीने के पानी में प्रतिजीवियों जैसे कि टैट्रोसाइक्लीन को एक ग्राम प्रति लीटर की दर से उपयोग किया जा सकता है। एक दिन से 2 सप्ताह की आयु तक के चूजों की सुरक्षा के लिए उनके आहार में 1.25 ग्रा. प्रति कि. ग्रा. आहार की दर से एम्प्रोलियम को 3 दिन के लिए बटेरों में कॉक्सीडियोसिस के नियंत्रण करने के लिए इस्तेमाल किया जा सकता है। तीन दिन तक पीने के पानी में 1 ग्रा. प्रति ली. की दर से स्ट्रेप्टोमाइसिन डालने से बटेरों में वर्णकारी आन्त्रशोध रोग के नियंत्रण किया जा सकता है। स्वच्छता और सफाई बटेरों में रोगों के उत्पन्न होने का विलोपन करने या न्यूनतम करने के लिए प्रमुख महत्व रखते हैं। बटेरों का कुक्कुट पालन के कुछ रोगों के प्रति सुग्राहय पायी जाती हैं, लेकिन वे रानीखेत रोग के विषाणु और कॉक्सीडिया के कुछ स्ट्रेनों की प्रतिरोधी होती हैं। तथापि, वे डेमेरिया अर्थात ई. यूजुरा और ई. सुनोडाई की कुछ स्ट्रेनों के प्रति सुग्राहय होती हैं। इसको आहार में 2 कि. ग्रा. प्रति टन की दर से कैल्सियम प्रोपियोनेट मिलाकर रोका जा सकता है, चूंकि यह फफूंद की बढ़वार को रोकती हैं।

# हाइड्रोपोनिक्स (जल निभर कृषि) प्रौद्योगिकी द्वारा हरे चारे का उत्पादन

Mk- iQYy dekj ukbd[1] ,o Mk- j?kukFk ch- èkjh[2]

## iLrkouk

यह भली–भांति सिद्ध हो चुका है कि डेरी पशु का राशन बिना हरे चारे के अधूरा होता है। तथापि, डेरी किसानों द्वारा हरे चारे के उत्पादन में आने वाली प्रमुख बाधाओं में, चारे की खेती के लिए भूमि का घटता आकार, पानी का अभाव या लवणीय जल, खेती (बुआई, मिट्टी चढ़ाने, निराई–गुड़ई, फसल कटाई आदि) के लिए अधिक श्रमिकों की आवश्यकता, बढ़वार का अधिक समय (लगभग 45–60 दिन), वर्ष भर उसी गुणवत्ता वाले हरे चारे की अनुपलब्धता, खाद और उर्वरक की आवश्यकता तथा प्राकृतिक आपदाएं शामिल हैं। चारे की खेती की परम्परागत विधि के एक विकल्प के रूप में फार्म पशुओं के हरे चारे के लिए हाइड्रोपोनिक्स प्रौद्योगिकी आगे आई है, यद्यपि भारत में हाइड्रोपोनिक्स वाले हरे चारे के उत्पादन खाद और पौषणिक मान पर बहुत कम जानकारी उपलब्ध है। हाल ही में भारत सरकार की स्कीम राष्ट्रीय कृषि विकास योजना (आर. के. वी. वाई.) के अन्तर्गत हाइड्रोपोनिक्स की हरा चारा उत्पादन की 11 इकाइयों की गोवा की विभिन्न डेरी सहकारी समितियों में स्थापना की गई है जिसमें गोवा स्थित भा.कृ.अ.प. का अनुसंधान परिसर भी शामिल है। हाइड्रोपोनिक्स से हरा चारा सभी इकाइयों में नियमित रूप से उत्पादित किया जा रहा है तथा इसे गोवा के डेरी पशुओं को खिलाया जा रहा है। फिर भी, उत्पादन और डेरी पशुओं के लिए हाइड्रोपोनिक्स से तैयार हरा चारा खिलाने के दौरान अनेक महत्वपूर्ण अवलोकन रिकार्ड किए गए, जिनकी इस लेख में संक्षेप में चर्चा की गई है।

## gkbMªksikfuDl izkS|kfxdh

हाइड्रोपोनिक्स शब्द यूनानी के 'वाटर वर्किंग' शब्द से लिया गया है। 'हाइड्रो' का अर्थ है वाटर (जल) और 'पोनिक' का अर्थ है वर्किंग (चक्र) तथा इस प्रौद्योगिकी में बिना मिट्टी के पौधों को उगाया जाता है।

## gkbMªksikfuDl izkS|kfxdh ls gjk pkjk mRiknu bdkbZ

हाइड्रोपोनिक्स की हरा चारा उत्पादन इकाई में एक ग्रीनहाउस (हरितगृह) और एक नियंत्रण इकाई होती है। हरित गृह का आकार लगभग 25 फुट (लम्बाई) x 10 फुट (चौडाई) x 10 फुट (ऊंचाई) का होता है तथा इसमें सात दिन में प्रतिदिन 600 कि.ग्राम हरा चारा उत्पादन की क्षमता होती है। हरत गृह में रैक होते हैं और प्रत्येक रैक में अनेक कतारें होती है, जिसमें चार घंटे सोखे बीजों को रखना बेहतर है। ट्रेज के ठीक ऊपर पाइपों




xkok fLFkr Hkk-Ñ-vu-i- dk vuqlèkku ifjlj esa gkbMªkikfuDl dh gjk pkjk mRiknu bdkbZ

[1] ofj"B oKkfud (पशु पोषण), गोवा के लिए भा.कृ.अनु.प. का अनुसंधान परिसर, एला, ओल्ड गोवा
[2] i'kq fpfdRld] गोवा डेरी, कुर्ति, गोवा

में माइक्रो–फोगर्स लगे होते हैं, जो अन्ततः हरित गृह की आर्द्रता को बनाऐ रखते हैं। पुनर्चक्रण के माध्यम से पानी की बचत के लिए हरित गृह के अन्दर एक पानी की टंकी लगाई जाती है जिसमें पम्प की सुविधा होती है। पौधों के लिए प्रकाश की व्यवस्था को बढ़ाने के लिए हरित गृह की दीवारों और छत दोनों में ट्यूब लाइट्स लगे होते हैं। नियंत्रण इकाई सेन्सर्स के माध्यम से स्वतः जल और प्रकाश के निवेश को नियमित करती है।

## gkbMªkikfuDl ikS|kfxdh }kjk gjk pkjk mRiknu

हाइड्रोपोनिक्स द्वारा हरा चारा उत्पादन में कई चरण हैं, जिनके द्वारा हरे चारे की गुणवत्ता और मात्रा को प्रभावित किया जा सकता है।

## cht dk p;u vkj lk[kuk

सामान्यतः मक्का और जौ हाइड्रोपोनिक्स प्रौद्योगिकी के पसन्दीदा चारे हैं। अधिकतम बायोमास बनाने के लिए बीज की गुणवत्ता सबसे महत्वपूर्ण होती है। दाना साफ, मोटे, अक्षतिग्रस्त या कीट से असंक्रमित, अनुपचारित और जीवनक्षम होने चाहिए। बीजों के सोखने में बीज के दानों को पूरी तरह सामान्य पानी में सोखकर पानी निकालकर 7 दिनों के लिए हरित गृह के अन्दर अंकुरण के लिए रखना है। इस अवधि के दौरान दाने को गीला रखा जाता है तथा पानी का तीव्र उद्ग्रहण होता है जिससे पौधों की बढ़वार और विकास के लिए आरक्षित सामग्री का चयापचय और उपयोग करना सरल बन जाता है। यह देखा गया है कि मक्के के बीज को भिगोने के लिए केवल 4 घण्टे का समय काफी और अधिक लाभकारी होता है। यद्यपि प्रत्येक ट्रे के मात्रात्मक बीजों को अलग–अलग भिगोया जा सकता है, लेकिन प्रबन्धन के मद्देनजर कुल बीजों को एक बड़ी बाल्टी में भिगोना लाभप्रद होता है। इसके अतिरिक्त, इस विधि से खराब और टूटे हुए बीज पानी पर तैरने लगते हैं जिन्हें आसानी से निकाला जा सकता है।

## cht dk Vªt e Hkjuk

सोखने के बाद बीजों को अलग कर लिया जाता है तथा अलग ट्रे में भरने के लिए दूसरी बाल्टी में रखा जाता है। बीजों का अंकुरण बीजों की प्रति वर्ग सतही क्षेत्र पर निर्भर पाया गया है। एक 90 सेमी. लम्बाई एवं 32 सेमी. की चौड़ाई वाले ट्रे के लिए 1.25 किग्राम (सोखने से पूर्व वजन) काफी है।

,d ckYVh e cht dk fHkxkuk rFkk Hkhx cht dk Nkuuk

cht dk vyx&vyx Vª e Hkjuk

## gfjrxg d vUnj V t dk j[kuk

ट्रेज को प्रत्येक रैक में पंक्तिवार हरितगृह के अन्दर क्रमबद्ध तरीको से रखा जाता है। रैकों और ट्रेज की संख्या हरितगृह के आकार पर निर्भर करती है। तथापि, पंक्तियों की संख्या सामान्यतः 7 से गुणा की जाती है तथा भीगे हुए बीजों को अंकुरण के लिए 7 दिनों तक हरितगृह के अन्दर रखा जाता है। पहले दिन, सोखा बीज वाली ट्रेज को सबसे ऊपर वाली रैक पर रखा जाता है और उसके बाद प्रतिदिन इसको क्रमशः नीचे वाली पंक्तियों में रख दिया जाता है ताकि सातवें दिन तक वे अन्तिम

gfjrxg d vUnj jdk dh fofHké ifDr;k e eDd d vdfjr chtk d lkFk V t

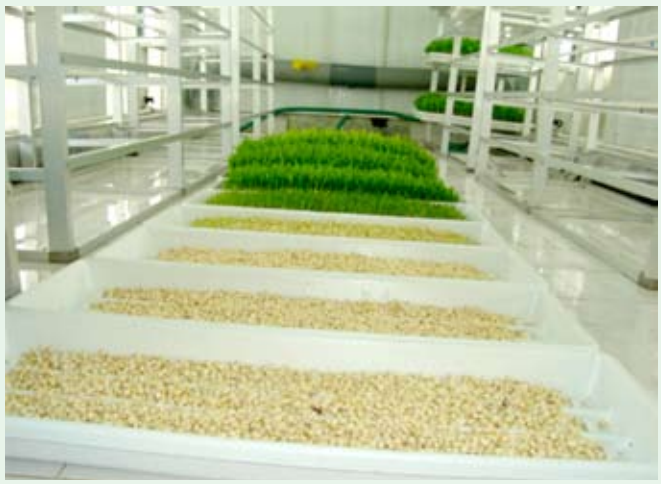

gkbMkikfuDl }kjk gj pkj ¼eDdk½ dh fnuk d 1 l 7 rd dh of)

पंक्ति तक पंहुच जाए। अंकुरण दूसरे–तीसरे दिन शुरू हो जाता है तथा तीसरे–चौथे दिन के बाद जड़ों का विस्तार स्पष्ट रूप से दिखाई देता है। पोषक तत्व का चयापचय जल से पोषक तत्वों के अवशोषण के साथ बीजों को सुरक्षित रखता है तथा जड़ों का विस्तार पौधों को बढ़नें देता है। हरितगृह के अन्दर पौधों को 7 दिनों तक उगने दिया जाता है तथा आठवें दिन इनको काट लिया जाता है तथा डेरी पशुओं को चराई के रूप में दिया जाता है।

## t y

हरितगृह में आपूर्ति किए जाने वाले जल की गुणवत्ता बहुत महत्वपूर्ण होती है, क्योंकि जीवाणुओं की वृद्धि के माध्यम से जल संदूषण का प्रमुख स्रोत होता है। पानी स्वच्छ और रासायनिक एजेन्ट्स से मुक्त होना चाहिए। यह देखा गया है कि गोवा की जलवायु में हरितगृह के अन्दर जल का पुनर्चक्रण फफूंदी की वृद्धि को बढ़ाता है। इसके अलावा, यदि पानी साफ नहीं है तो छोटी कणिकाएं माइक्रो–फोगर्स को अवरुद्ध कर देती हैं, जिससे जल पाइप अधिक दबाव के कारण फट सकते हैं। जब जल फोगिंग सामान्य नही होता है तो पौधों की पंत्तियां सूख जाती हैं तथा वृद्धि बुरी तरह से प्रभावित होती है। इसलिए यह सुझाव दिया जाता है कि यदि जल उपलब्ध है तो इस पद्धति में जल का पुनर्चक्रण नहीं करना चाहिए। इसके अलावा नियमित नाली के पानी का हाइड्रोपोनिक्स द्वारा हरा चारा उत्पादन इकाई के

t y dk iup d.k ugh djd ckxokuh d fy, fu;fer :i l mi;kx djuk

समीप उद्यान में उपयोग किया जा सकता है। यह देखा गया है कि 600 कि.ग्राम प्रतिदिन उत्पादन क्षमता की हाइड्रोपोनिक्स द्वारा हरे चारे का उत्पादन करने वाली इकाई में प्रतिदिन लगभग 1500 लीटर पानी की आवश्यकता होती है। यदि जल का पुनर्चक्रण नहीं किया जाता है तो कम से कम एक सप्ताह में टंकी को साफ किया जाना चाहिए।

## izdk'k

यह प्रतिवेदित है कि अनाज के बीज अंधेरे और प्रकाश की स्थितियों में समान रूप से उगते हैं तथा प्रकाश की तीव्रता पौधों की वृद्धि के लिए आवश्यक नहीं होती है। कभी–कभी यह पाया गया है कि पौधों की पंक्तियां वृद्धि के सातवें दिन या उसके बाद अनाकर्षक रूप से पीली पड़ जाती है, जो बहुत तीव्र प्रकाश के कारण हो सकता है।

## lQkbZ vkSj LokLF;

हरितगृह जीवाण्विक संदूषण विशेषकर उच्च आर्द्रता के कारण फफूंदी के लिए अत्यधिक सुग्राह्य होता है। जीवाण्विक संदूषण के कारण पौधों की वृद्धि उचित प्रकार से नहीं होती है तथा जड़ का भाग विघटित हो जाता है, जिससे कम उपज और दुर्गन्ध आती है। अन्ततः ऐसे पौधों को पशु पसन्द नहीं करते। इसलिए हाइड्रोपोनिक्स प्रौद्योगिकी के माध्यम से साफ और स्वास्थ्यकर गुणवत्ता वाले हरे चारे का उत्पादन बहुत अधिक महत्व रखता है। कटाई के बाद ट्रेज को सौम्य धुलाई करने के द्वारा साफ करना चाहिए। फोगर्स के छिद्रों को उचित फोगिंग के लिए पिनों द्वारा साफ किया जाना चाहिए। हरितगृह के फर्श और दीवारों को भी फफूंदीं की बढ़वार से बचने के लिए उचित ढंग ब्लीच सादित पानी से साफ कर देना चाहिए।

## mit

हाइड्रोपोनिक्स की हरे चारे की उपज बीज की किस्म और गुणवत्ता, हरितगृह की सफाई और स्वास्थ्यकर स्थिति से अत्यधिक प्रभावित होती है। हाइड्रोपोनिक्स का हरा चारा एक चटाई की तरह लगता है, जिसमें जड़, बीज, और पौधे शामिल होते हैं। अवलोकन किया गया है कि लगभग 3.5 कि.ग्रा. और 5.5 कि.ग्रा. हाइड्रोपोनिक्स हरे चारे का उत्पादन क्रमशः 1 कि.ग्रा. पीली मक्का और 1 कि.ग्रा. सफेद मक्का से किया जाता है।



gkbMªksikfuDl gjk pkjk tMksa cht vkSj iksèkksa dk feykdj ,d pVkbZ tSlk yxrk gS

## mRiknu dh ykxr

हाइड्रोपोनिक्स हरे चारे की उत्पादन की लागत मुख्यतः बीज, विद्युत और श्रम की लागत से प्रभावित होती है। वर्तमान स्थिति में, मक्का से हाइड्रोपोनिक्स हरे चारे की उत्पादन की लागत 4 से 5 रुपये प्रति कि.ग्रा. होती है। निस्सन्देह, उत्पादन की लागत किसी भी प्रौद्योगिकी की सफलता की प्रमुख निर्धारक होती है, लेकिन इसका सबसे महत्वपूर्ण तथ्य है कि किन हालातों के अन्तर्गत हम उस प्रौद्योगिकी का प्रयोग कर रहे हैं।

## jklk;fud lja?kVu] Lokfn"Vrk vkSj ikpu

मक्के का हाइड्रोपोनिक्स हरा चारा परम्परागत मक्के के हरे चारे से अधिक पौष्टिक है। परम्परागत हरे चारों की

Mjh xk;k dk gkbMªkikfuDl gjk pkjk dh pjkbZ

तुलना में हाइड्रोपोनिक्स हरे चारे में कच्ची प्रोटीन (10.7 प्रतिशत की अपेक्षा 13.6 प्रतिशत), कच्चा वसा (2.3 प्रतिशत की अपेक्षा 3.5 प्रतिशत), और नत्रजन मुक्त निष्कर्षक (51.8 प्रतिशत की अपेक्षा 66.7 प्रतिशत), अधिक होता है, लेकिन कच्चा रेशा (25.9 प्रतिशत की अपेक्षा 14.1 प्रतिशत), कुल राख (9.4 प्रतिशत की अपेक्षा 3.8 प्रतिशत) और एसिड अवलेय राख (1.4 प्रतिशत की अपेक्षा 0.3 प्रतिशत) कम होती है। निस्सन्देह, हाइड्रोपोनिक्स हरा चारा डेरी पशुओं के लिए स्वादिष्ट होता है और पसन्द किया जाता है लेकिन अन्तर्ग्रहण कुल राशन के अन्य घटकों पर निर्भर करता है। यह देखा गया है कि हाइड्रोपोनिक्स (लगभग 7 कि.ग्रा./पशु/दिन) कम था, जबकि डेरी पशुओं के राशन में अधिक सान्द्रित मिश्रण (5 कि.ग्रा./पशु/दिन) होता है। तथापि, हाइड्रोपोनिक्स हरे चारे का अन्तर्ग्रहण 25 कि.ग्रा./पशु/दिन तक बढ़ जाता है, जब सान्द्रण मिश्रण को घटाकर 2 कि.ग्रा./पशु/दिन किया गया था। कभी–कभी, यह भी देखा जाता है कि पशु हाइड्रोपोनिक्स हरे चारे के पत्तीदार भाग को ग्रहण कर लेते है तथा जड़ों को छोड़ देते हैं। तथापि, पशुओं के इस चयनित अन्तर्ग्रहण से बचने के लिए राशन में अन्य मोटे चारे के भागों (कटा हुआ भूसा या परम्परागत हरा चारा) के साथ हाइड्रोपोनिक्स हरे चारे को मिलाया जा सकता है। डेरी गायों (61.0 की तुलना में 65.0 प्रतिशत) तथा बछड़ों (62.5 की अपेक्षा 63.0 प्रतिशत) में मक्का आधारित हाइड्रोपोनिक्स हरे चारे के राशन की शुष्क पदार्थ पाचकता परम्परागत हरा चारा (हाइब्रिड नेपियर) आधारित राशन की तुलना में अधिक होती है।

## fu"d"k

मक्का का हाइड्रोपोनिक्स हरा चारा परम्परागत मक्का के हरे चारे से अधिक पौष्टिक होता है। जहां चारा सफलता पूर्वक नहीं उगाया जा सकता है या सर्वोत्कृष्ट डेरी समूह वाले प्रगतिशील आधुनिक डेरी किसान अपने डेरी पशुओं की चराई के लिए हाइड्रोपोनिक्स हरे चारे का उत्पादन नहीं कर सकतें हैं, ऐसी स्थितियों में हरा चारा डेरी राशन का एक अभिन्न अंग होता है।

# शूकरों में कृत्रिम गर्भाधान

Mk- ,e- d#.kkdj.k[1]] Jh ;- jRukdju[2]] Mk-ih- d- uk;d[3] ,o Mk- ujUæ irki flg[4]

## ifjp;

कृत्रिम गर्भाधान एक ऐसी तकनीक है जिसमें नर पशु से सजीव स्पर्म वाला वीर्य एकत्र कर स्वच्छ उपकरणों के माध्यम से मादा पशु के जननांग में उपयुक्त समय पर समाविष्ट किया जाता है। यह कार्य स्वच्छ एवं स्वास्थ्यकर स्थिति के अन्तर्गत होता है, जिसके परिणामस्वरूप सामान्य संतति की उत्पत्ति होती है। पूरे विश्व में कृत्रिम गर्भाधान से फार्म पशुओं के प्रजनन सुधार और आनुवंशिक उपयोग में इससे सहायता मिलती रही है।

## Ñf=e xHkkZèkku dk bfrgkl

घरेलू पशुओं में कृत्रिम गर्भाधान का कार्य सन 1322 ई. से होता आया है। एक अरब मुखिया ने 14 वीं शताब्दी में रूई के फोहे से वीर्य एकत्र करके दूसरे मादा पशु के जननांग में समाविष्ट किया था, जहां से यह अवधारणा प्रचलित हो गई। सन् 1780 में घरेलू पशुओं के कृत्रिम गर्भाधान में पहला वैज्ञानिक अनुसंधान स्पैलैंजनी द्वारा कुत्तों के ऊपर किया गया था। उसके प्रयोगों से यह सिद्ध हुआ कि निशेचन क्रिया स्पर्मैटौजोआ में निहित होती है न कि वीर्य के द्रव तत्वों में। वर्ष 1900 के प्रारंभिक दशक में रूस में ईवानौ द्वारा कृत्रिम गर्भाधान का प्रयोग शूकरों पर किया गया था (ईवानो 1907, ईवानौक, 1922)।

विगत कुछ दशकों के दौरान शूकर पालकों द्वारा कृत्रिम गर्भाधान के प्रयोग में वृद्धि हुई। इसमें मुख्य उदेश्य यह होता है कि आनुबंशिक रूप से उत्कृष्ट शूकर को लिया जाता है जिससे कृत्रिम गर्भाधान के माध्यम से उत्पादकों को अधिक से अधिक लाभ हो सके, किन्तु सफल गर्भाधान के लिए कृत्रिम गर्भाधान का कार्यक्रम कुशल प्रबंधन से सम्पन्न करने की आवश्यकता है, विशेष रूप से शूकर के एस्ट्रैस की उचित पहचान, वीर्य की उचित सार–संभाल और उसके बाद गर्भाधान की उचित प्रक्रिया जिससे अन्ततः परिणाम उच्च अवधारणा दर व नवजात बच्चों की संख्या के रूप में सामने आता है। शूकरों में कृत्रिम गर्भाधान के मामले में विशेष समस्याएं होती हैं, जिनमें जननांगों की शारीरिक संरचना और बच्चे देने का बहुविधिक प्रकृति प्रमुख हैं।

प्राकृतिक समागम के दौरान शूकर 50–70 अरब स्पर्मैटोजोआ ग्रीवा में स्खलित करता है, जो बाद में गर्भाशय एवं हॉर्न में प्रविष्ट होते हैं। निषेचन की प्रक्रिया में केवल वे स्पर्म ही पहुंचते हैं जो मादा के प्रतिकूल वातावरण में समायोजित हो सकते हैं। वीर्य में बडी मात्रा में भ्रूणीय प्लाज्मा भी मिल जाता है जिससे शरीर और हॉर्नों के फुलाव में मदद मिलती है। संभोग के दौरान शूकर का तना हुआ शिश्न योनि में प्रविष्ठ होता है। योनि में वीर्य स्खलन के लिए शिश्न पर पीछे से दबाव बढ़ाया जाता है। शूकर फार्मों में आजकल प्राकृतिक संभोग के स्थान पर कृत्रिम गर्भाधान ही प्रचलित हो गया है, क्योंकि यह कम खर्चीला है, और इसका तरीका आसान है, और तेजी से प्रयोग किया जा सकता है, और कई वर्षों से इसमें सफलता मिलती रही है।

गर्भाधान का उदेश्य डिम्बवाहिनी में उत्सर्जित सभी डिंबाणु जनकोशिकाओं के निशेचन के लिए उपयुक्त सक्रिय स्पर्म संकलन स्थापित करना है। गर्भाधान विधि से योनि नलिका के परवर्ती हिस्से में नाल शलाका द्वारा वीर्य मादा के निक्षेपण स्थल पर आधारित नई गर्भाधान विधियों को विकसित किया गया है। वीर्य निक्षेपण के नये नयाचारों में पूरे गर्भाशय में (परवर्तीग्रीवीय गर्भाधान या अन्तरागर्भाशय गर्भाधान) अथवा गर्भाशय हॉर्न में गहराई तक (गहन अन्तरागर्भाशय गर्भाधान) अथवा डिंब वाहनी में (लैप्रोस्कोपिक अन्तरा–डिंबीय गर्भाधान) शामिल हैं।

[1] ofj"B oKkfud (पशु प्रजनन), राष्ट्रीय डेरी अनुसंधान संस्थान का पूर्वी क्षेत्रीय केन्द्र, कल्याणी, पं.बं.
[2] ofj"B vuqlèkku Qyks] गोवा के लिए भा.कृ.अनु.प. का अनुसंधान परिसर, एला, ओल्ड गोवा
[3] ofj"B oKkfud (पशु पोषण), गोवा के लिए भा.कृ.अनु.प. का अनुसंधान परिसर, एला, ओल्ड गोवा
[4] funs'kd, गोवा के लिए भा.कृ.अनु.प. का अनुसंधान परिसर, एला, ओल्ड गोवा

## Ñf=e xHkkèkku d ykHk

कृत्रिम गर्भाधान के विभिन्न केन्द्रों में शूकरों की कई नस्लों का उत्कृष्ट गुणवत्तापूर्ण वीर्य उपलब्ध है। अच्छे शूकरों का आनुवंशिक प्रभाव अधिक व्यापक रूप से प्रसारित किया जा सकता है। शूकर झुंडों में नये जीनों के समावेशन हेतु कृत्रिम गर्भाधान एकदम सुरक्षित और कम खर्चीली विधि है। शूकर और शूकरियों में आकार के अन्तर और कृत्रिम गर्भाधान में कोई मायने नही हैं। नर शूकरों के लालन–पालन की लागत को बचाया जा सकता है। घटिया नर शूकरों की शीध्र ही पहचान वीर्य मूल्यांकन द्वारा सुनिश्चित की जा सकती है। अपेक्षित आकार के शूकर का वीर्य उसकी मृत्यु के बाद भी प्रयोग में लाया जा सकता है। यह उन पशुओं के लिए भी लाभदायक है, जो कामोन्माद के समय नर को अपनी ओर नहीं आने देना चाहते। इससे एकदम सही प्रजनन व ब्याने सम्बन्धी रिकार्ड रखने में सहायता मिलती है। इससे वृद्ध, भारी चोटिल नर शूकरों का उपयोग भी किया जा सकता है।

## Ñf=e xHkkèkku l gkfu;k

इसके लिए भलीभांति कार्य का प्रशिक्षण दिए जाने और विशेष उपकरणों की आवश्यकता होती है। इस कार्य को करने वाले व्यक्ति को प्रजनन सम्बन्धी संरचना और कार्यप्रणाली की पूरी जानकारी होना जरूरी है। उचित ढंग से उपकरणों की सफाई न होने और पशु के अस्वस्थ्य स्थिति में होने से निकृष्ट कोटि की निषेचन होगा। इसमें प्राकृतिक सेवाओं की अपेक्षा अधिक समय की जरूरत होती है। शूकरियों में कामोन्माद की अवधि (12 से 96 घंटे से भी अधिक और अंडोत्सर्ग के समय) में बहुत अधिक विविधता होती है। कृत्रिम वीर्य गर्भाधान अनुपयुक्त समय पर किया जाता है अथवा कभी–कभी सही ढंग से नहीं हो पाता। इसकी मात्राओं को $15^0$ सें. से $18^0$ सें. तक सुरक्षित रखना होता है। मादा के जननांगों में जीवित शुक्राणुओं की संख्या कम होती है। जमा हुआ वीर्य से ब्याने की दर कम रहती है। 72 घंटे से अधिक देर तक संकलित जमी हुई वीर्य से औसत से कम परिणाम मिलते हैं। अधिकतर परिणाम निराशाजनक होते हैं।

हालांकि कृत्रिम गर्भाधान के लाभ, हानियाँ के मुकाबले कम हैं।

## oh;l ldyu dh fofèk;k

### d½ Ñf=e ;kfu

यह एक कठोर नलिकाकार वर्तिका है जिसमें रबर की रेखाऐं होती है जिन्हें गर्म पानी से भरा जाता है।

### [k½ fo|rh; L[kyu

यह ऐसी विधि है, जिसमें मलाशयी जाँच–सलाई द्वारा श्रोणीय नसों और मांसपेशियों में विद्युतीय धारा प्रवाहित की जाती है, जिसे किसी वाहय विद्युत–श्रोत से संलग्न किया जाता है।

### x½ vkoj.k;Dr gLr rduhd

यह वीर्य संकलन करने की एक साधारण सी विधि है, यह सुनिश्चित किया जाना चाहिए कि वीर्य में उच्च स्तरीय शुक्राणु सेल सांद्रित मात्रा में मौजूद हों और वीर्य अधिक मात्रा में हो, सप्ताह में तीन बार से अधिक वीर्य न लिया जाय।

## 'kdj oh;l

शूकर 6 से 8 माह के मध्य परिपक्व हो जाता है और इससे वीर्य एकत्र किया जा सकता है। इसकी मात्रा लगभग 200 से 500 मी.लीटर होती है। तीन पारियों में स्खलन होता है। पहली और तीसरी पारी वाले वीर्य में स्पर्मैटोजोआ नहीं होते, किन्तु तीसरी पारी वाले वीर्य में भरपूर स्पर्म मौजूद होते हैं। वर्ष 1969 में मेक्डोनाल्ड ने बताया कि शूकर का स्खलित वीर्य तीन

हिस्सों में दिया जाता है। स्पर्म से पूर्व का वीर्य चिपचिपा होता है, जो मजबूती से चिपक जाता है, यह लिसलिसा पदार्थ होता है। दूसरी पारी वाले हिस्से में स्पर्मैटोजोआ मौजूद होते हैं तथा तीसरी पारी वाले हिस्से में चिपचिपाहट अधिक होती है। इसमें वीर्य की कुल स्खलित मात्रा का 20–25 प्रतिशत तक चिपचिपा घोल ही मौजूद होता है।

शूकरों को वास्तविक या कृत्रिम मादाओं के ऊपर चढ़ाना और वीर्य स्खलित करना सिखाया जाता है। यदि शूकर की इसमें कोई रुचि नहीं होती है तो कृत्रिम मादा के पिछले हिस्से में एस्ट्रेस शूकरी के मूत्र से लिप्त कर प्रयोग करना चाहिए, जिससे शूकर के कामोन्माद में वृद्धि होगी और वीर्य स्खलन भी शीघ्र होगा। स्खलन का औस्त समय 10 मिनट होता है। एक बार के स्खलित वीर्य से 15 से 25 शूकरियों का गर्भाधान किया जा सकता है।

## 'kdj&oh;l dk eY;kdu

### ek=k

वीर्य की मात्रा 100 से 500 मि.ली. तक होती है और इसकी माप ग्रेजुएटेड मापी सिलिंडर से की जा सकती है।

### l thork

शुक्राणु सजीवता का वास्तविक मूल्यांकन का सर्वोत्तम तरीका यही है कि वीर्य की गुणवत्ता का आंकलन किया जाए। वीर्य को संकलित करने के तुरंत बाद कम पावर (10 ऐक्स) वाले सूक्ष्मदर्शी यंत्र के प्रयोग से गर्म स्लाइड (30 से 35$^0$सें.) पर इसका परीक्षण किया जाए। बढ़िया वीर्य में एक विशेष 'लहर' सी गति दिखाई देती है और प्रत्येक स्पर्मैटोज़ोवा की संचलन भी नज़र आती है। घटिया किस्म के वीर्य में सजीवता एकदम मंद होती है और स्पर्मैटोज़ोआ एक ढ़ेर में नजर आते हैं। वीर्य की सजीवता इस पर भी निर्भर करती है कि हर अंश की कितनी मात्रा संकलित हुई है। यदि कोई संकलन मुख्य रूप से शुक्राणुओं से भरपूर होता है तो उसमें अधिक सजीवता और लहरदार संचलन होगी, जबकि तरल पदार्थों से भरा वीर्य ऐसा नहीं होता है। यदि वीर्य में कुल असामान्य लक्षण 25 प्रतिशत से कम मिलते हैं तो वीर्य की गुणवत्ता संतोषजनक होती है।

### oh;l dk HkaMkj.k

यदि वीर्य को भंडारित करना हो तो इसे संकलित करने के तुरंत बाद पतला कर देना चाहिए या इसे विस्तारित कर देना चाहिए। मिश्रित करने से पहले तनुकारक पदार्थ और वीर्य को गुनगुने पानी से एक ही तापमान पर (32 से 35$^0$सें.) ला देना चाहिए। तनुकारक पदार्थ का जोर से छपाका न मारें बल्कि धीरे से उसे वीर्य में मिलाएं, वीर्य को तनुकारक पदार्थ में न डालकर तनुकारक पदार्थ को वीर्य में डालें और दोनों के मिश्रण को धीरे–धीरे हिलाते रहें। उसके बाद पतले वीर्य का मूल्यांकन करके उसे 15–18$^0$ सें. पर भंडारित किया जा सकता है।

## 'kdjh e bLVªl dh igpku

कृत्रिम गर्भाधान वाले प्रजनन कार्यक्रम के अन्तर्गत मदकाल का पता लगाना सबसे महत्वपूर्ण कार्य है, जिसमें समय लगता है। मदकाल का पता लगाने में यह भी देखना होता है कि जब पशु मदकाल में होता है तो उसके शरीर अथवा स्वभाव में परिवर्तन आ जाते हैं। मदकाल का पता लगाने का उद्देश्य यह निश्चित करना है कि शूकरी कब अपने चरम कामोत्तेजना में होती है। यह मदकाल वह अवधि होता है जब मादा के ऊपर भार रखा जाता है तो वह एकदम स्थिर रहेगी और अपने स्थान से हटेगी नहीं। सफल गर्भाधान के लिए मदकाल का पता लगाना सबसे प्रमुख मांपदंड होता है। मदकाल का पता लग जाने के बाद मादा की प्रजनन क्रिया 12 घंटे के भीतर की जानी चाहिए और पुनः 12 घंटे में होनी चाहिए। शूकरी की प्रजनन क्रिया मदकाल का पता लगने के 18–24 घंटे के अन्तर्गत होनी चाहिए और पुनः 12 घंटे बाद करनी चाहिए।

## ,LVªl dk nkSjku LoHkko esa ifjorZu

शूकरी या गिल्ट में जब मदकाल होता है, तो वह आवाज करेंगी, गुर्रायेंगी, इधर–उधर भटकती हैं और असामान्य सी हरकतें करते हुए शोर मचाती हैं और दूसरी शूकरी के ऊपर चढ़ने लगती हैं। मदकाल में शूकरी की रूचि शूकरों की ओर अधिक होने लगता है, यदि पास में शूकरशाला होगी तो शूकरी उस ओर जाने लगती है। इनकी गतिविधियों में वृद्धि होने लगती है, इनकी योनि में लाली और सूजन आ जाती है। वास्तविक मदकाल आने से 12–36 घंटे पूर्व तक वह स्वयं को अलग–थलग रखती हैं। जब मादा वास्तविक मदकाल में होती हैं तो योनि में रक्त–प्रवाह भी होता है जिससे योनि गहरी लाल रंग की हो जाती है। योनि में पहले पारदर्शी और बाद में मटमैला और चिपचिपा स्राव होने लगता है। योनि में चिपका हुआ चारा इनके वास्तविक मदकाल में होने का लक्षण है।

वास्तविक मदकाल के दौरान मादा एकदम स्थिर रहेगी और पीछे मुड़कर उपने विछले हिस्से की और मुंह लगाने की कोशिश करेगी, जब उसके ऊपर कोई भार रखा जाता है, तो उसे अच्छा लगता है। इससे स्पष्ट संकेत मिलता है कि उसे शूकर के चढ़ने की लालसा है और उसके भार को वहन कर सकती है। वास्तविक मदकाल का एक लक्षण यह भी है कि उसके कान फड़फड़ाने लगते हैं।

## Ñf=e xHkkZèkku dh rduhd

### xHkkZèkku dh rduhd

गर्भाधान की पद्धति में गर्भाधान, ग्रीवा गर्भाधान के पश्चात या अंतरा गर्भाशयी गर्भाधान, गर्भाशय में गहराई तक (गहन अंतरा गर्भाशयी गर्भाधान) तथा डिंब वाहनी (लैप्रोस्कोपिक अंतरा डिम्बीय गर्भाधान) गर्भाधान की पारम्परिक विधि समाविष्ट हैं।

### ikjEifjd Ñf=e xHkkZèkku

यह सर्वप्रथम विकसित विधि है, जो उपयोग में लाने हेतु सर्वाधिक सरल है। डिस्टल सर्विक्स में स्थित साधारण कैथटर के माध्यम से 80–100 मि.ली. ऐक्सटेंडर में लगभग 2.5–3.5 बिलियन शुक्राणु गर्भाशय में प्रत्यारोपित किए जाते हैं।

### i)fr

शूकरी या गिल्ट को वास्तविक मदकाल में होना चाहिए। योनि को किसी स्वच्छ मुलायम कपड़े अथवा कागज के तौलिए से साफ करें ताकि गर्भाधान की डंडी प्रविष्ठ करते समय जननांग मे किसी प्रकार के संदूषक न प्रवेश करें। गर्भाधान करने वाली डंडियां कई तरह के आकार में मिलती हैं। इनमें दो प्रकार की डंडियों की विधि बहुत साधारण हैं– एक ऐसी होती है कि उसके अगले सिरे पर घड़ी की सुई के विपरीत क्रम में धागे होते हैं और दूसरी फोम टिप वाली डंडियां होती हैं।

धागे लगी डंडियों को प्रयोग करते समय योनि में प्रविष्ट करने से पहले इसके सिरे को वीर्य से अथवा थोड़ा के. वाई. जैली से चिकना बना लिया जाता है। ब्लाडर को खुलने से बचाने के लिए डंडी के सिरे को ऊपर की ओर उठाएं (रीढ़ की ओर) फिर डंडी को धीरे से दबाएं और इसे धीरे–धीरे घड़ी की सुई की विपरीत दिशा मे तब तक हिलाते हुए सरकाते रहें जब तक कि अगला सिरा सेरविक्स में ताला बन्द न हो जाए। टिप में ताला बन्द हो जाने पर डंडी स्प्रिंग के माध्यम से पीछे खिंच जाती है, जब इसे धीरे से खीचा जाता है। नोक पर फोम लगी डंडियों को घुमाने की आवश्यकता नहीं होती। धीरे से डंडी को तब तक दबाते रहिए जब तक कि आपको लगे कि फोम टिप ने सेर्विक्स के मोड़ों को पकड़ लिया है।

## xzhoksijkar@xzhokHksnh vFkok varjk xHkkZ'k;h xHkkZèkku dh izfØ;k

इस गर्भाधान प्रक्रिया का उद्देश्य गर्भाशय के भीतर स्पर्मैटोज़ोआ का संचयन करना है। ग्रीवोपरांत/ग्रीवाभेदी गर्भाधान की मुख्य बाधा है सेर्विकल कैनाल, जिसमें सेर्विकल मोड़ होते हैं। अधिकांश उपकरण या उपाय ऐसे होते हैं जिनमें सेर्विकल

ताला निर्मित करने हेतु व्यावसायिक कृत्रिम गर्भाधान यांत्रिका का प्रयोग होता है। ये उपकरण सामान्यता पारंपरिक कैथटर की तुलना में 15–20 से.मी. लम्बे होते हैं और इन्हें यांत्रिकी के ल्यूमन द्वारा भीतर प्रविष्ट किया जाता है और उसके बाद सेर्विकल कैनाल तक बढ़ाया जाता है, फिर वह गर्भाशय के अन्दर पहुंच जाता है। सामान्य रूप से 30 मि. ली. मात्रा में 1000 मिलियन स्पर्मैटोजोआ समाविष्ट किए जाते हैं। इसमें मुख्य लाभ यह होता है कि इसमें वीर्य पीछे की ओर कम बहता है और इस संदर्भ मे हाल ही में बताया गया है कि पीछे की ओर प्रवाहित होने वाले वीर्य की प्रतिशतता कुल समाविष्ट मात्रा का 2 तिहाई हिस्सा होता है। इसलिए सेर्विकल और गर्भाशयी क्षति को कम करने हेतु गर्भाधान की उपयुक्त प्रौद्योगिकी अपना कर ध्यान देने की जरूरत है, क्योंकि मामूली कैथटरों से जननांग के ऊत्तक क्षतिग्रस्त हो सकते हैं।

## de ek=k okyk xHkkèkku : vkrjk xHkk'k;h xHkkèkku

गहन अंतरा गर्भाशयी गर्भाधान का उदेश्य गर्भाशय में गहराई तक स्पर्मैटोज़ोआ का संचयन करना होता है। इसमें मुख्य बाधा यह होती है कि शूकरियों का जननतंत्र काफी जटिल होता है, इसमें संर्विकल मोड़ तो होते ही हैं (उसी तरह जैसा कि सेर्विकल गर्भाधान के बाद की स्थिति होती है), बल्कि गर्भाशय में विद्यमान हॉर्न की लम्बाई और जटिलता भी बहुत होती है।

इसके लिए विशेष रूप से एक नया उपकरण तैयार किया गया है जिसकी कार्यकारी लम्बाई 1.80 मि.मीटर, 4 मि. मीटर ब्यास और भीतरी ट्यूबिंग का व्यास 1.80 मि. मीटर होता है। व्यावसायिक कृत्रिम गर्भाधान यंत्रिका (सेर्विकल ताला लगाने हेतु) के समावेशन के बाद गहन गर्भाशयी समावेशन की क्रिया की जाती है। कैथटर को उसके बाद यंत्रिकी द्वारा प्रविश्ट करते हैं, जो सेर्विकल कैनाल से होकर गुजरता है और गर्भाशय के भीतर गहराई तक पहुंचाया जाता है। इस पद्धति के अन्तर्गत पतले द्रव पदार्थ में स्पर्मैटोज़ोआ की सान्द्रता 150–600 मिलियन तक होती है और 1000 मिलियन जमाकर पिघलाया नमूनों में सफलता रही है।

## cgrr de ek=k okyk xHkkèkku % vkrjk fMEch; xHkkèkku

डिम्ब में गर्भाधान सम्बन्धी तकनीकों के विकास से यह समझा जाता है कि इसके अन्तर्गत स्पर्मैटोज़ोआ की अपेक्षित संख्या जितना संभव हो कम हो जाती हैं गर्भाशय या डिम्ब वाहिनी में प्रत्यक्ष रूप से वीर्य संचयन के लिए लैप्रोस्कोपी तकनीकी लैप्रॉटोमी से कम आक्रमक होती है। शूकरियों के गर्भाशय में लैप्रोस्कोपी से स्पर्मैटोज़ोआ का संचयन एक दम यूटेरो ट्यूबल जंक्शन के निकट हो जाता है, जिससे निशेचन (92.3 प्रतिशत ) दर बहुत अच्छी रही और प्रति हॉर्न मात्र 10–12 मिलियन स्पर्मैटोज़ोआ का संचयन हुआ। अन्तरा डिम्बीय गर्भाधान के अन्तर्गत डिम्ब में स्पर्मैटोजोआ का संचयन अधिक संख्या (0.3–0.6 मिलियन) में होता है। जब 0–3 या 0–5 मिलियन स्पर्मैटोज़ोआ का समावेश होता है तो पैंलिस्पर्मिक पेनिट्रेशन की शिकायत बहुत कम होती है। इसलिए बहुत कम संख्या में स्पर्मैटोज़ोआ से गर्भावस्था प्राप्त करने हेतु लेपैरोस्कोपी गर्भाधान क्रिया बहुत ही सक्षम और प्रभावी होती है। शूकर उद्योग के लिए ये सभी गर्भाधान की पद्धतियां उपयोगी साधन सिद्ध होंगी।

## fu"d"k

यदि फार्म से संकलित वीर्य का प्रयोग किया जाता है अथवा किसी ए.आई. केन्द्र से खरीदकर किया जाता है तो सफल गर्भाधान के लिए निम्न तथ्य विचारणीय हैं:–

- शूकरियों में एस्ट्रेस की पहचान करना
- गर्भाधान के समय का सही निर्धारण
- उपयुक्त तकनीकी का प्रयोग
- वीर्य का उपयुक्त भंडारण ओर सार–संभाल

# स्वाइन फ्लू के तथ्य

Mk- t M-ch- ncy[1] Mk- ,l-ch- cjc )[2] Mk- uj Un i rki fl g[3]

'स्वाइन फ्लू' (एच.आई.एन.आई.) नाम काफी गुमराह करने वाला है क्योंकि इसका संक्रमण सामान्य रूप से मनुष्य में होता है किंतु इसका प्रादुर्भाव सबसे पहले शूकरों में पाया गया था। जन–सामान्य अभी भी भ्रमित है कि यह रोग शूकरों के माध्यम से फैल रहा है। रुस और चीन ने मेक्सिको और इंडोनेशिया से आयातित होने वाले शूकर मांस पर प्रतिबंध लगा दिया है और आयातित शूकर मांस और अन्य शूकर उत्पादों को नष्ट करने की योजना बनाई है। मिस्र ने पिछले कुछ वर्षों में हजारों शूकरों का वध किया है। इसलिए 30 अप्रैल, 2009 को विश्व स्वास्थ्य संगठन ने भ्रम हटाने के लिए यह घोषण की कि स्वाइन फ्लू शब्द का प्रयोग रोक दिया जाए। एच.5. एन.1 को पक्षी इन्फुल्यूयंजा या बर्ड फ्लू कहते हैं क्योंकि यह रोग सबसे पहले पक्षियों में पाया गया था। इसी प्रकार यह नया एच 1 एन 1 विषाणु का प्रादुर्भाव एक ऐसी प्रजाति से हुआ है जो शूकरों में मौजूद होता है। इसलिए इसका नाम स्वाइन फ्लू पड़ा। इस इन्फ्ल्यूयंजा विषाणु की रोचक विशेषता यह है कि यह एक या दो तरीकों से अपना हुलिया बदल देता है, जैसे जीवरोधी ड्रीफ्ट (उसी विषाणु के भीतर म्यूटेशन) अथवा जीनरोधी सिफ्ट (दो विषाणुओं के बीच में आनुवंशिक परिवर्तन/विनिमय)। इस विषाणु में 13 विभिन्न 'एच' जीनरोधी तथा 9 विभिन्न 'एन' जीनरोधी पाए जाते हैं। इनका रूपांतरण 117 विभिन्न संयोजनों में होता है जो मनुष्यों पर आक्रमण करता है और प्रभावित करता है। इन्फ्ल्यूएंजा की महामारी के इतिहास में 1918 में (स्पेनिश फ्लू), 1957 में (एशियन फ्लू), 1968 में (हांगकांग फ्लू) के फैलने के पीछे एंटिजेनिक सिफ्ट ही कारण था क्योंकि उस समय इस विषाणु से बचने का उपाय विकसित नहीं हुआ था। वर्ष 1889 से एंटिजेनिक सिफ्ट के छः उदाहरण मिले हैं। 1889 में एच.2 एन.2 विषाणुओं का प्रकोप हुआ था, उसके बाद 1900 में एच3एन8, 1918 मे एच1एन1, 1957 में एच2एन2, 1968 में एच3एन2 तथा 1977 में एच1एन1 का प्रकोप रहा। प्रत्येक विषाणु प्रजाति में एच.ए. तथा एन.ए. प्रोटीन मौजूद होते हैं जो कई वर्षों से मनुष्य में नहीं थे इसलिए मनुष्य में इस रोग की प्रतिरोधक क्षमता नहीं है। मानव, स्वाइन और एवीयन इन्फुल्यूयंजा 'ए' विषाणु के लिए शूकर उचित "मिश्रण वहिकाओं" के रूप में माने जाते हैं। शायद वे नई प्रजातियों के उभरने में प्रमुख भूमिका निभाते हैं जो वैश्विक समस्या की जड़ हो सकती है। तथापि, इसका प्रकोप मनुष्य में भी हो सकता हैं, अगर मनुष्य उन पशुओं और मनुष्यों के इन्फ्ल्यूंएजा 'ए' के विषाणुओं से संक्रमित होता है। स्वाइन फ्लू या ए./एच.1 एन.1 विषाणु मानव इन्फ्ल्यूएंजा, पक्षी इन्फ्ल्यूएंजा और स्वाइन इन्फ्ल्यूएंजा की संकर प्रजाति है। एच.1 एन.1 विषाणु मनुष्यों के लिए रूपांतरित हो गया है और बहुत ही संक्रामक होता है। इसके विपरीत एच.5 एन.1 बर्ड फ्लू का प्रकोप पक्षियों में होता है जो कभी–कभी पक्षी द्वारा मनुष्यों में फैलता है।

मीडिया और जनसाधारण के माध्यम से स्वाइन फ्लू के बारे में व्यापक प्रचार के कारण शूकर उद्योग और शूकर मांस का निर्यात बुरी तरह से प्रभावित हुआ है। किंतु किसी संक्रमित जानवर का मांस को भली–भांति पकाकर ग्रहण करने से रोग के फैलने का डर नहीं है मगर इस तथ्य से आम जनता अवगत नहीं है। अभी भी रेडियो, दूरदर्शन और प्रिंट मीडिया स्वाइन फ्लू शब्द का लगातार प्रयोग करके अप्रत्यक्ष रूप से मांस उद्योग के लिए समस्या उत्पन्न कर रहे हैं। इस रोग के फैलने का सबसे सामान्य रास्ता बलगम की कीटाणुओं से और संक्रमित व्यक्तियों के छींकने से तथा विषाणु से दूषित किसी सतह का व्यक्ति का हाथ को छूने से होता है। संक्रमण के बाद पशुओं और मनुष्यों में एक ही तरह के लक्षण दिखाई दिए हैं किंतु शूकरों में संक्रमण के कम या ना के बराबर होते हैं। संक्रमित शूकरों में बुखार, कमजोरी, छींक, खांसी, सांस लेने में कठिनाई होती है। इनमें मौत अक्सर कम (लगभग 1–4 प्रतिशत) पाई गई है तथा विषाणु से शारीरिक भार कम हो जाता है और विकास रूक सा जाता है, जिसके कारण किसानों को आर्थिक हानि होती है। मनुष्यों में इस बीमारी के लक्षण बुखार, खांसी, गले में सूजन, शरीर में

[1] oKkfud (पशु चिकित्सा एवं सार्वजनिक स्वास्थ्य) गोवा के लिए भा.कृ.अनु.प. का अनुसंधान परिसर, एला, ओल्ड गोवा
[2] i èkku oKkfud (पशु चिकित्सा एवं सार्वजनिक स्वास्थ्य) गोवा के लिए भा.कृ.अनु.प. का अनुसंधान परिसर, एला, ओल्ड गोवा
[3] fun 'kd, गोवा के लिए भा.कृ.अनु.प. का अनुसंधान परिसर, एला, ओल्ड गोवा

दर्द, ठंड लगना और थकावट होना आदि है। कुछ मरीजों में दस्त और उल्टी होने की शिकायत भी मिली है। इसके अलावा निमोनिया, बहुत अधिक बुखार, पानी की कमी और आंतरिक अंगों में असंतुलन भी देखा जा सकता है। इसमें मृत्यु सांस रूक जाने के कारण होती है। बच्चों और बुजुर्गों में मौत की संभावना भी होती है। इस प्रकार के लक्षण दिखाई देने पर मरीजों को तुरंत डाक्टर या अस्पताल में दिखाना चाहिए।

इस रोग में सामान्य रूप से प्रतिजीवी दवाओं का प्रयोग होता है जिसका हालांकि इन्फ्ल्यूएंजा विषाणु पर कोई प्रभाव नहीं होता है लेकिन बैक्टिरीयल निमोनिया और अन्य गौण संक्रमणों से बचाव हो सकता है। विषाणुरोधी दवाओं के अलावा घर में और अस्पताल में बुखार को नियंत्रित करने, दर्द में राहत मिलने और तरल पदार्थ के संतुलन बनाए रखने और अन्य प्रकार के दूसरे संक्रमण से बचाने का उपाय आदि सहायक उपचार हो सकता है। अमेरिका के रोग नियंत्रण एवं बचाव केंद्र ने सिफारिश की है कि टैमिफ्लू (ओसलटैमिर) या रिलेंजा (जानामिटिर) उपचार में स्वाइन इनफ्ल्यूएंजा विषाणुओं के संक्रमण की रोकथाम हो सकती है।

इलाज से बेहतर परहेज होता है। इसलिए स्वाइन इन्फ्ल्यूएंजा को नियंत्रित करने के लिए टीकाकरण बहुत महत्वपूर्ण होता है, किंतु अभी हाल ही दशकों में यह बहुत कठिन होता जा रहा है क्योंकि इस विषाणु के क्रमागत विकास से पारंपरिक टीकों का प्रभाव निष्क्रिय हो गया है। यह विषाणु ठंडी स्थिति को छोड़कर जीवित कोशिकाओं के बाहर 2 सप्ताह से अधिक दिनों तक जीवित नहीं रह सकता है और असंक्रमित करने वाली दवाओं से इसको निष्क्रिय किया जा सकता है। यह विषाणु स्वस्थ शूकर में 3 महीने तक जीवित रहता है और इनसे अन्य देश विदेश के स्वस्थ पशुओं में एस.आई.वी. का संक्रमण उत्पन्न करते हैं। इसलिए नए पशुओं को संक्रमित पशुओं से अलग रखना चाहिए। शूकर पालकों, पशु चिकित्सकों और प्रयोगशाला कर्मियों के लिए यह बहुत बड़ा जोखिम होता है। इसलिए इसकी रोकथाम के उचित उपाय किए जाने की आवश्यकता है जैसे मास्क, दस्ताने और प्रयोगशाला में प्रयोग किया जाने वाला कोट पहनकर पशुओं की देखभाल करना आवश्यक है। फार्म में शूकरशालाओं व अन्य पशुओं के आश्रयों में संक्रमण रोकने के लिए कीटनाशक दवाओं का उपयोग जरूरी है। अभी हाल ही में जारी की गई ट्राईवेलेंट इन्फ्ल्यूएंजा का टीका नए 2009 एच.1 एन.1 विषाणु प्रजाति की रोकथाम करने में असमर्थ है। भीड़भाड़ वाले स्थानों से बचना, चेहरे पर मास्क लगाकर घूमना, हाथों को साबुन या कीटाणुनाशक से बार–बार धोना आदि से इसका प्रकोप कम हो सकता है। संक्रमित व्यक्ति को बिल्कुल अलग रखें और उसकी देखभाल की जाए, मृतक को सावधानी से अंतिम संस्कार करें। जैसाकि उत्तरी भारत में यह एच.1 एन.1 फ्लू तेजी से फैल रहा है इसलिए हर जगह हमें सतर्क रहने की आवश्यकता है तभी हम इस जानलेवा बीमारी से बच सकते हैं।

# प्रदूषण के कारक और उनके वानस्पतिक निवारण

Mk- jktukjk;.k[1] Mk- ujUn irki flg[2]

निरन्तर बढ़ती जनसंख्या का भोजन, वस्त्र एवं आवास की मूलभूत आवश्यकताओं को पूरा करने की जुगाड़ में हम जाने जनजाने प्रकृति के साथ खिलवाड़ करते जा रहे हैं। और जीवन के निर्याणक तत्वों क्षिति, जल, पावक, गगन, समीरा के संघटकों में अनावश्यक एवं अवांछित परिवर्तन सेतु बनकर उन्हें प्रदूषित किये जा रहे हैं। प्रकृति के इस अविवेकपूर्ण दोहन के फलस्वरूप जीवनदायी पर्यावरण प्रदूषित हो रहा है, और चारो ओर अत्याधिक गर्मी, सर्दी, सूखा, अकाल, बाढ़ तथा पेयजल की गम्भीर समस्या में संकट को प्रसूचित कर रही है। औद्योगिकीकरण, शहरीकरण, जीवनशैली का प्लास्टीकरण, उच्च जीवन स्तर के दिखावे हेतु अनेकानेक अनावश्यक वस्तुओं का संग्रह आदि की मौलिक आवश्यकताओं की उपलब्धि दुर्लभ हो रही है। इस स्थिति के फलस्वरूप पूर्ण स्वस्थ जीवन कल्पना लोक की बात होती जा रही है और शरीर की प्रतिरोधक क्षमता कम होती जा रही है।

शहरों में सबसे अधिक पर्यावरण प्रदूषण वाहनों से निकलने वाले धुँए से होता है। इसके बाद उद्योगों से और शेष का अधिकांश भाग जीवाष्म ईधन जैसे तेल, कोयला तथा लकड़ी आदि को जाता है। शुद्ध वायु में आयतन के आधार पर नत्रजन 78.09%, आक्सीजन 20.94%, आर्गन 0.93%, कार्बन डाई आक्साइड 0.0318%, निआन 0.0018%, हीलियम 0.00025%, क्रिप्टन 0.001%, मीथेन 0.00015%, हाइड्रोजन 0.00005%, कार्बन मोनो ऑक्साइड 0.00001%, नाइट्रस आक्साइड 0.000025% मेनन 0.000008% ओजोन 0.000002%, सल्फर डाइ आक्साइड 0.000002%, अमोनिया 0.000001%, नत्रजन डाई आक्साइड 0.000001ः तथा जलवाष्प 1.3% होती है। वायु के इस संगठन में कोई भी परिवर्तन समस्त जीवों को प्रभावित कर सकता है।

कोई भी वायु प्रदूषण फैलाने में मानवीय कारक सर्वाधिक जिम्मेदार हैं। लेकिन प्राकृतिक कारकों की भी लगभग बराबर की सहभागिता है। वायु प्रदूषण के कारक व उनसे जनित प्रदूषण निम्न तालिका में दर्शित है–

| Øe l- | L=kr | eq[; in"kd |
|---|---|---|
| 1 | औद्योगिक उत्पाद क्रियाएं (रासायनिक, धातु कर्म व अन्य क्रियाएं) | हाइड्रोजन सल्फाइड, हाइड्रोजन क्लोराइड, सल्फर डाई आक्साइड, सल्फर व कार्बन कण, कार्बन मोनो आक्साइड, नाइट्रस आक्साइड, जिकं, तांबा, केडमिय युक्त पदार्थ, धुँआ तथा धूल, फ्लोराइड्स, जैविक हाइड्रोकार्बन। |
| 2 | कृषि क्रियाएं (फसलों पर उर्वरक एवं रसायनों का छिड़काव व अन्य क्रियाएं) हाइड्रोजन कार्बन फास्फेट, अमोनियम नाइट्रेट, क्लोरीन युक्त हाइड्रो कार्बन, सीसा, बी.एच.सी. व डी.डी.टी. के कण, धूल घुँआ आदि। | |
| 3 | दहन प्रक्रम (घरेलू, यातायात, तापीय विद्युत ऊर्जा एवं अन्य कार्यों हेतु दहन छिड़काव व अन्य क्रियाएं) धुँआ, कार्बन डाइ आक्साइड, कार्बन मोनो ऑक्साइड सल्फर डाई आक्साइड, नत्रजन ऑक्साइड, हाइड्रो कार्बन धातु आक्साइड आदि। | |
| 4 | विलायकों का प्रयोग (स्प्रे पेन्टिंग, विलायक निष्कर्षण तथा सफाई में प्रयोग विलायक) | हाइड्रोकार्बन, कार्बनिक अकार्बनिक वाष्पकण, विभिन्न गैसों से उत्पन्न वाष्पीय गैसे आदि। |
| 5 | परमाणु ऊर्जा (परमाणु ईधन का निर्माण व परिष्करण उनके उपकरण परीक्षण) | यूरेनियम, बैरीलियम, फ्लोराइड आयोडीन धूल आदि। |

[1] iod dk;Øe leUo;d, कृ.वि.के., गोवा के लिए भा.कृ.अनु.प. का अनुसंधान परिसर, एला, ओल्ड गोवा
[2] funs'kd, गोवा के लिए भा.कृ.अनु.प. का अनुसंधान परिसर, एला, ओल्ड गोवा

उक्त विभिन्न प्रकार के प्रदूषकों (प्रदूषण) का मनुष्य पर प्रत्यक्ष एवं परोक्ष रूप से हानिकारक प्रभाव डालता है। जिसका विवरण निम्नवत है –

| Øe l- | in"kd | n"iHkko |
|---|---|---|
| 1. | फ्लोराइडस | दांतों की खराबी एवं श्वसन रोग |
| 2. | हाइड्रोजन | हड्डी की जलन |
| 3. | नत्रजन डाई आक्साइड | जलन, ब्रोकाइटिस, फेफड़ो व हृदयक रोग |
| 4. | सल्फर | घुटन, आंखो और गले की जलन, श्वसन सम्बन्धी बीमारियाँ त्वचा रोग, वृक्को का रोग आदि |
| 5. | कार्सिनोजेनिक हाइड्रो कार्बन | कैंसर |
| 6. | शोर (765 डेसिबल्स) | इन्सोमीनिया, दिल एवं स्नायु तंत्र की बीमारियाँ |
| 7. | जल (बी.ओ.डी. 3 मि.ग्रा../ली.) | श्वसन, जठर, आंत्र शोध, गले का संक्रमण तथा क्षय रोग |
| 8. | ओजोन | सीने में दर्द, फेफड़ों की क्रियाशीलता का कम होना आंख के रोग व खांसी |
| 9. | रेडियो एक्टिव पदार्थ | कैंस, हृदय, फेफड़ों सम्बन्धी रोग, आनुवंशिक परिवर्तन आदि। |
| 10. | वाष्पशील हाइड्रोकार्बन | आंखों में जलन, त्वचा की बीमारियाँ, खांसी आदि। |
| 11. | कार्बन मोनोआक्साइड | मानसिक विकार, थकावट, कैंसर, श्वांस रोग, खांसी, सिर दर्द आदि। |
| 12. | कार्बन डाईआक्साइड | श्वांस रोग, खांसी, यकृत तथा किडनी में क्षति, थकावट, हीमोफीलिया, त्वचा रोग, मानसिक व्याग्रता तथा कैंसर आदि। |
| 13. | कीटनाशक दवाईयाँ थकावट, त्वचा, फेफड़े, वृक्क तथा पेट सम्बन्धी रोग। | |
| 14. | सूक्ष्म कण, सीसा, केडनियम | हृदय रोग, रक्त दबाव बढ़ना, त्वचा में जलन, मानसिक तनाव, मधुमेह कैंसर आदि |
| 15. | परआक्सी एसीटल नाइट्रेट | आंखों में जलन, जाला, माडा, रेटिना का कमजोर होना, त्वचा में जलन, मधुमेह, फेफड़ो का कैंसर, मानसिक तनाव आदि। |

वायु प्रदूषण से न केवल मानव, बल्कि संसाार के अन्य भौतिक तत्व जैसे जलवायु, वनस्पति, जीव जंतु तथा अन्य प्रकाश के पदार्थ गंभीर रूप से प्रभावित होते हैं। वनस्पतियों पर प्रदूषण का प्रभाव निम्नलिखित तालिका में स्पष्ट रूप से दिया गया है–

| Øe l- | e[; in"kd | n"iHkko |
|---|---|---|
| 1. | कार्बन डाई आक्साइड | पौधों की वृद्धि रूकना, क्लोफिल में कमी, पत्तियों के किनारे झुलसना। |
| 2. | कार्बन मोनो आक्साइड | पत्तियों का मुरझाना, फलों का पकने से पहले गिरना आदि। |
| 3. | नत्रजन आक्साइड | पौधों की वृद्धि मे रूकावट, टमाटर तथा सेम की पत्तियों का लवक रहित रहना, संतरे की उपज घटना। |
| 4. | सल्फर डाई आक्साइड | आम के नीचे के सिर पर काला धब्बा पड़ना, अंकुरण के समय वृद्धि कम होना, कपास, सेव, अंगूर में विकास की क्रिया रूकना। |
| 5. | वाष्पशील हाइड्रो कार्बन | कलियों तथा फूलों का मुरझाना, पत्तियों में उत्त्कों का मुरझाना। |
| 6. | रेडियो एक्टिव पदार्थ | पत्तियों का सूखकर नष्ट होना, पौधों की वृद्धि रूकना या कम होना, फूल व फलों का कम बनना। |
| 7. | सूक्ष्म कण सीसा, केडमियम फ्लोराइड | पौधों की वृद्धि कम होना व रूकना, फलों का आकार कम होना, व पकने से पूर्व गिरना। |
| 8. | परआक्सी एसीटल नाइट्रेट | उत्तकों का क्षय होना, नई पत्तियों में क्लोरोफिल की कमी होना, व नई पत्तियों का मुरझाना आदि। |
| 9. | ओजोन | अंकुरित व कोमल पत्तियों में उत्तक क्षय के कारण उनका रंगहीन होना व काला पड़ना, फलों की वृद्धि रूकनाव उनका छोटा होना आदि। |

## i;koj.k izn"k.k e ouLifr;k dk egRo

पेड़–पौधे मानव जीवन के ही नहीं बल्कि सभी जीव जंतुओं और शुद्ध वातावरण के एक अभिन्न अंग है। ये उपयोग उत्पादों के साथ–साथ ऑक्सीजन के प्रमुख स्रोत है। वृक्षारोपण के कई लक्ष्य होते हैं जैसे छाया के लिए, सुगंध के लिए, खाने के उत्पाद के लिए, विभिन्न उपयोग के लिए लकड़ी के लिए और प्रदूषण मुख्यतः वायु प्रदूषण रोकने के लिए आदि।

## izn"k.k jksdus ds fy, o{kksa dk p;u

वृक्षों का चयन प्रदूषकों के प्रकार, उनकी गहनता, स्थिति, उपलब्धता मिट्टी व जलवायु की अनुकूलता को ध्यान में रखकर किया जाता है। प्रदूषकों को कम करना/समाप्त करना उन्हें एकल करने की दृष्टि से वृक्षो की विभिन्न प्रकार की आकृति, मूलक क्रियात्मक और जैव रासायनिक विशेषताएं होती है। जैसे– पत्तियों का प्रबंधन, आकार सतह (चिकनी या रोंयदारो) त्वचा रोम की उपस्थिति या अनुपस्थिति, आकार एवं संख्या, शाखाओं का आकार व प्रसार, विद्युत सुचालकता, उर्वरता तथा सल्फाइड ऑक्साइड गतिविधियाँ आदि।

वायु प्रदूषण को रोकने में वनस्पतियाँ महत्वपूर्ण योगदान करती है जो कि निम्नवत है–

### 1- vkDlhtu ds lkr ds :i esa

वनस्पतियाँ वातावरण की कार्बन डाई ऑक्साइड को ग्रहण कर ऑक्सीजन छोड़ती है। उदाहरणार्त पीपल का एक वृक्ष जो 162 वर्ग मीटर में फैला हो, व तकरीबन 2052 कि.ग्रा. कार्बन डाई ऑक्साइड प्रति घंटे लेकर 1715 कि.ग्रा. ऑक्सीजन विर्सजित करता है। इसी प्रकार पर्णपाली पौधो से प्रति हेक्टयर औसतन 15000 कि.ग्रा. ऑक्सीजन वायुमंडल में मिलती है। एक अनुसंधान के अनुसार एक 50 वर्ष पुराना पेड़ रु. 2.5 लाख ऑक्सीजन, व 2 लाख की पशु प्रोटीन का संरक्षण, रु. 2.5 लाख का मृदा संरक्षण, रु. 3.0 लाख का जल चक्रण और आर्द्रता नियंत्रण और रु. 3.5 लाख चिडियाँ, गिलहरी व कीटों का आश्रय और रु. 5.0 लाख का वायु प्रदूषण नियंत्रण का लाभ देता है। (दास, 1980, दी वेल्यू ऑफ ए ट्री, प्रोसीडिंग्स ऑफ इंडियन सांइस कांग्रेस 1980)

### èkwy izn"k.k

सामान्यतः सड़कों और भवनों के बीच 8 मी. चौड़ी हरित पेड–पौधों की पट्टियाँ बनाने से धूल में 2–3 गुना कमी आती है। शीतोष्ण इलाकों में कोनीफर वृक्ष लगाने से धूल गिरने में 42 प्रतिशत तक की कमी हो सकती है। धूल प्रदूषण रोकने के लिए भरपूर शाखाओं, घनी पत्तियों और रोंयदार संरचना, चमकीली या मोमी पत्ते और पर्णों की अधिकता वाले पेड–पौधे उपयुक्त होते हैं।

निम्नलिखित पौध प्रजातियाँ धूल प्रदूषण को कम करने में प्रभावशाली सिद्ध हुए है–

1. *फाइकस बेगालेंसिस*
2. *केसिआ सिआमिया*
3. *फाइकस इन्फेक्टोरिया*
4. *ऐल्सटोनिया स्कोलरिस*
5. *डलबरजिया सिस्सू*
6. *मेंजिफेरा इंडिका*

7. *पेल्टोफोरम फेरूजिनियम*
8. *पॉलीएल्थिया लॉगीफोलिया*
9. *सिसिजयम क्यूमिनाई*
10. *पीसिया स्पेशीज*
11. *एलनस विरिडस*
12. *ब्राया पर्पुरा सेन्स*
13. *टेक्टोना गेंडिस*

## èofu i:n"k.k

मोटी पत्तियों व लचीले पर्णवृन्तों वाले पेड–पौधे जिनमें प्रदोलन सहने की क्षमता ध्वनि प्रदूषण को रोकने के लिए उपयुक्त रहते हैं। भारी शाखाओं व तने वाले पौधों में भी ध्वनि तरंगों को अपर्वत करने की क्षमता होती है।

ध्वनि प्रदूषण से बचने के लिए वाहनों की गति के अनुसार विभिन्न प्रकार के पेड़–पौधे लगाने चाहिए। तीव्र गति से चलने वाले वाहनों के लिए यातायात लेन में 15–27 मी. की दूरी पर 18–30 मी. चौड़ी छोटे बड़े पेड़ों की हरित पट्टियाँ लगानी चाहिए। जिनमें मध्यवर्ती पौधों की ऊंचाई कम से कम 13.5 मी. होनी चाहिए जबकि सामान्य गति से चलने वाले वाहनों के लिए 6–15 मी. चौड़ी पट्टियाँ (छोटे–बड़े पौधों की) यातायात लेन के केन्द्र से 6–15 मी. की दूरी पर लगाना चाहिए। सामान्यतः 1.8–4.0 मी. की ऊंचाई वाली झाड़ियाँ यातायात लेन के साथ तथा 45–90 मी. तक ऊंचाई के पेड़ उनके पीछे लगाने चाहिए। ध्वनि प्रदूषण कम करने में सहायक पौधे –

1. *ऐजाडिरेक्टा इंडिका*
2. *ब्यूटिया मोनोस्पर्मा*
3. *ऐल्सटोनिया स्कोलारिस*
4. *इरीथ्रिना वेरीगेटा*
5. *टर्मिलेनिया अर्जुना*
6. *ग्रेविलिया रोवस्टा*
7. *टेमरिन्डस इंडिका*
8. *एलनस इंडिका*
9. *टेरोर्स्पमम एसरीफोलियम*
10. *बेटुला पेडुला*
11. *पोपुलस यूफ्रेटिका*
12. *जुनिपेरस काम्प्यूनिस*
13. *सिरंगा वल्गेरिस*
14. *वाइयर्नम लैटाना*

rkfydk &4 o{kk dh èky lxg.k {kerk

| Øe l- | o{k dk uke | fe-xk-@oxl eh- | | |
|---|---|---|---|---|
| | | Åijh lrg | fupyh lrg | dqy ek=k |
| 1. | सागौन | 4.10 | 1.25 | 5.35 |
| 2. | अशोक | 3.92 | 0.64 | 4.56 |
| 3. | शाल | 3.40 | 1.10 | 4.50 |
| 4. | अर्जुन | 3.25 | 1.24 | 4.49 |
| 5. | पीपल | 2.56 | 1.59 | 4.15 |
| 6. | आम | 2.50 | 1.55 | 4.05 |
| 7. | प्राइड ऑफ इंडिया | 2.82 | 1.22 | 4.04 |
| 8. | गुलाबी कचनार | 2.70 | 1.20 | 3.90 |
| 9. | बरगद | 2.70 | 1.20 | 3.90 |
| 10. | कदम्ब | 2.42 | 1.15 | 3.57 |
| 11. | पारस पीपल | 2.82 | 0.71 | 3.53 |
| 12. | सीता अशोक | 2.56 | 1.22 | 3.78 |

स्रोत : दास एवं साथी, 1981, ट्रीज–एज डस्ट फिल्टर, सांइस टुडे 15(2), 19–21

## xl in"k.k dk de dju okys ikèk

### 1- lYQj Mkbl vkDlkbM dk vo'kkf'kr dju okys ikèk

*ऐल्बिजिया लेब्बेक, ऐजारडिका इंडिका, फाइकस, ऐजिजिओसा, ऐलेन्थस, ऐक्सेल्सा, ऐल्सटोनिया, स्कोलेरिस, लेजरस्ट्रोमिया, प्लासरजिनी, टर्मिनेलिया अर्जुना, क्वेरकस, पालुस्ट्रिस, क्वेरकस रूब्रा, माइमूसोप्स, ऐलजाई पोलिएल्थिया लांगीफोलिया* आदि प्रजातियाँ सल्फर डाई आक्साइड को 17–20 प्रतिशत तक अवशोषित कर लेती हैं।

### 2- ijvkDlh ,flVy ukbVªV vo'kkf'kr dju okys ikèk

*एसिर प्लेटेनोएडिस, एसिरनेगुंडा, क्वेरकस रूब्रा, क्वेरकस पालुस्ट्रिस* आदि वनस्पातिक प्रजातियाँ नाइट्रिक एसिड की 67% मात्रा तक सोख लेती है।

### 3- u=tu vkDlkbM

*फाइकस ऑरिइन्टेलिस, क्वेरकस रोबर, केसिया सियामिया, अल्नस* स्पी., *सेम्बुट्रस नाइग्रा, रोबिनिया स्यूडोकासिया जिपीफस* आदि पौध प्रजातियाँ नत्रजन ऑक्साइड गैस को अवशोषित कर इनका प्रदूषण कम करने में सहायक होते है।

### 4- gkbMkstu ¶yqvkjkbMl

*एलेन्थस एक्सेल्सा जुनिपेरस* स्पी. आदि पौध प्रजातियाँ हाइड्रोजन फ्लुओराइड्स गैस को अवशोषित कर इनका प्रदूषण कम करते हैं।

### 5- lhlk

*केसिया सिआमिया, जिजिफस मारसियाना* आदि पौधे सीसा के प्रदूषण को कम करते हैं। अध्ययनों से पता चला है कि सड़को के किनारे पर लगे पेड़ पौधे वाहनों के धुंए में उपस्थित सीसा की 30 प्रतिशत मात्रा तक अवशोषित कर लेते हैं।

## 6- vkt tku

*एसिर प्लेटेनोइडिस, एसिर नेंगुडा, क्वेरकस, रूब्रा* आदि वानस्पतिक प्रजातियाँ ओजोन से होने वाले प्रदूषण को कम करने में सहायक होते हैं।

विश्व में वनस्पति आच्छादन की कमी आ रही है और प्रदूषण गैसे बढ़ रही हैं, जिससे प्राकृतिक संतुलन बिगड़ रहा हैं। बढ़ती कार्बन डाइ आक्साइड, मीथेन, हाइड्रोजन ऑक्साइड, क्लोरो फ्लोरो कार्बन तथा ओजोन आदि गैसे हरित गृह प्रभाव पैदा कर रही हैं। परिणामतः वातावरण गर्म हो रहा है और इसके दुष्प्रभाव देखे जा रहे हैं। वातावरण में बढ़ी प्रदूषक मानव जीवन को प्रभावित कर रही है बल्कि अन्य जीव जन्तुओं, वनस्पति और एतिहासिक इमारतों को नुकसान पहुँचा रही हैं।

अतः वातावरण को प्रदूषण मुक्त करने में वृक्षों की अहम भूमिका को देखेते हुए किसी शहर/कस्बे, औद्योगिक क्षेत्र का भूपरिदृश्य तैयार करते समय प्रदूषण शोषक एवं जैव सौंदर्यात्मक मूल्यों की दृष्टि से वृक्षों को लगाना चाहिए। सामान्यतः एक व्यक्ति के लिए ऑक्सीजन की वार्षिक आवश्यकता 150 वर्ग मीटर पत्तियों की सहत यानी 30–40 मीटर की हरियाली से पूरी होती है। प्रदूषण पर कारगर ढंग से नियंत्रण करने के लिए यह जरूरी है कि प्रदूषण वाले क्षेत्रों में प्रदूषण को अवशोषित/कम करने वाली पौधों की प्रजातियाँ समुचित मात्रा में लगाएं, साथ ही साथ पेड़ पौधों की हरित पट्टियों के विकास के लिए सामाजिक, आर्थिक व वैज्ञानिक उपाय करने के लिए राष्ट्रीय स्तर पर नीति निर्धारण की जाय। तभी हम एक स्वच्छ भारत, हरित भारत (क्लीन इंडिया; ग्रीन इंडिया) का सपना साकार कर सकेंगे और सुख समृद्धि और स्वास्थ्य को पा सकेंगे।

# राजभाषा खण्ड...

# हिन्दी सप्ताह कार्यक्रम

गोवा के लिए भा.कृ.अनु.प. का अनुसंधान परिसर में हिन्दी सप्ताह कार्यक्रम सितंबर 14 से अक्तूबर 1, 2012 के बीच मनाया गया था। हिन्दी सप्ताह का प्रारम्भ गीत गायन प्रतियोगिता के साथ हुआ। सुलेख प्रतियोगिता में भी बड़ी उत्साह के साथ कई प्रतिभागियों ने भाग लिया। हिन्दी निबन्ध प्रतियोगिता में 'स्वास्थ्य में आहार और व्यायाम का योगदान', 'अपने बच्चों को यौन शोषण के खिलाफ सशक्त कैसे करें', 'हमारे संस्थान की टाइम मशीन', 'जलवायु परिवर्तन', 'हिन्दी का बचाव कैसे'? 'कृषि किसान के लिए वरदान या अभिशाप', 'मेरे मन में भारत की छवि', आदि रोमांचक शीर्षक दिए गए और प्रतिभागियों ने बड़े ही मनमोहक निबंध लिखें। संस्थान के तकनीकी अफसरों ने ''भारतीय लोक परम्परा में वृक्ष'' शीर्षक पर बड़े ही रोमांचक और लोक गीतों से भरा व्याख्यान दिया और सब का मन हर लिया। संस्थान के वैज्ञानिकों ने भी ''प्रयोगशाला से कृषक के खेत'' तक के विषय पर दिल और दिमाग से व्याख्यान प्रदान करके दर्शकों का दिल जीत लिया। हिन्दी में सामान्य ज्ञान प्रतियोगिता का भी आयोजन किया गया और अल्प हिन्दी भाषी लोगों से भरे इस संस्थान में बड़े ही उत्साह से कई प्रतिभागियों ने भाग लिया।

बच्चों के लिए चार श्रेणियों में 'पांच साल तक', 'एक से लेकर चौथी कक्षा तक', 'पांचवी से आठवीं' और 'नौवी से बारहवीं कक्षा तक' चित्रकला, सुलेख, निबंध, प्रतिभा दर्शन और वाद विवाद प्रतियोगिताएं ओयाजित किए गए। इस कार्यक्रम में श्रीमती निर्मला सिंह जी विशेष निर्णायक के रूप में आमंत्रित की गयी। उन्होंने बढ़े रूचि से प्रतिभागी बच्चों का उत्साह बढ़ाया। बच्चों ने भी बड़े उत्साह से प्रतियोगिताओं में भाग लेकर हिन्दी सप्ताह समारोह की रौनक बढ़ा दिया। हिन्दी सप्ताह का समापन एवं पुरस्कार वितरण समारोह, 1 अक्टूबर 2012 को डॉ. नरेन्द्र प्रताप सिंह जी के अध्यक्षता में सम्पन्न हुई। हिन्दी सप्ताह के कार्यक्रमों में 10 वैज्ञानिकों, 7 तकनीकि अफसरों, 7 प्रशासनिक अधिकारियों, 13 अनुसंधान अध्येयों और 22 बच्चों ने भाग लिया और सब कर्मचारियों में कुल 31 पुरस्कार एवं संस्थान के कर्मचारियों के बच्चों को 30 पुरस्कार प्रदान किये गए। सब प्रतिभागियों को प्रतिभागी पुरस्कार के रूप में उद्धरण छपा सुन्दर कप प्रदान किया गया। स्वागत भाषण में डॉ. श्रीमती मतला जूलियट गुप्ता ने हिन्दी सप्ताह के सफल आयोजन में संस्थान के सभी कर्मचारियों को उनके उत्साहपूर्ण सहयोग के लिए आभार व्यक्त किया और कहा कि सब प्रतियोगिताओं को एक साथ आयोजित करने से संस्थान के कई अन्य गतिविधियों के कारण बाधाएं आती हैं। इसलिए उन्हें सालभर एक महीने के कालान्तर में आयोजित करने का सुझााव रखा। निदेशक जी ने अपनी भाषण में सभी पुरस्कार्थियों को बधाई देते हुए आशा व्यक्त किया कि हिन्दी सप्ताह के खत्म होने के बाद भी संस्थान के कार्रवाई में राजभाषा का प्रचलन और बढ़ेगा।

दिवस
संधान परिसर

हिन्दी दिवस
लिए भा.कृ.अनु.प. का अनुसंधान परिसर

संधान परिसर

fgUnh fucU/k & iFke LFkku

# मेरे मन में भारत की छवि

Mk- eryk tfy;V xIrk[1]

जब मैं अपने मन में भारत की छवि के बारे में सोचती हूँ, मुझे उस गीत के बोल याद आते हैं–

''जहाँ डाल–डाल पर सोने की
चिड़िया करती है बसेरा
वो भारत देश है मेरा,
जहाँ सत्य–अहिंसा और धर्म का
पग–पग पर है ढ़ेरा
वो भारत देश है मेरा...

क्या सोच के उस कवि ने ये बोल लिखें होंगे शायद इतिहास के पन्नों में भारत को सोने का चिड़िाया बोलते थे इसीलिए। आँखे खोलकर जब मैं आज के भारत को देखती हूँ तो अजीब सी कंपन हो जाती है। सोना तो पहले मुगलों ने, फिर अंग्रेजों ने लूट लिया। चलों ये तो मिटने वाली चीजें थीं, लेकिन सत्य के पुजारी गांधी के इस देश में सत्य, अहिंसा यहाँ तक कि हमारी सभ्यता, परम्परा, भाषा सबको किसने लूट लिया?

क्या 'गरीबी', 'बेरोजगारी' इन्होंने लूट लिया? लेकिन फिर फोर्ब्स बुक और कई रिकार्डों में सबसे अमीर लोगों में विप्रो, के टाटा, बिरला, अजीज प्रेम जी, अम्बानी भाईयों और श्रीमती सोनिया गाँधी के नाम कैसे होते हैं? कैसे सुनने और पढ़ने को मिलता है कि भारत का काला धन जो स्विड्जलैंड में छुपा हुआ है वह कहाँ से आया। वह तो इस सोने के चिड़िया भारत का ही है ना? किसने इसके पर काटकर उसके उड़ान को थम सा दिया है। क्या हमारे इस हाल के जिम्मेदारी हम अपने नेताओं पर ही ठहरायेंगे। नहीं मैं यह नहीं मानती हूँ वह भी तो हमारे जैसे भारतीय हैं वह भी तो एक आम आदमी/औरत से इस पद पर नेता बनकर आए।

मेरी स्वर्णिम भारत की छवि शायद कई कारणों से धुंधला सी गई है, लेकिन मुझे अभी भी विश्वास है कि एक नई सुबह आएगी। इसी विश्वास से सन् 2005 में मैंने अमरीका में अपना पद त्यागकर भारत वापस आई थी। इस भारत को जिसे मैं रूखेपन, फ्रस्ट्रेशन के कारण छोड़कर 2002 में अमरीका भाग गई थी...... एक उज्ज्वल भविष्य की खोज में। अमरीका में मुझे अच्छी वेतन, घर और सब सुविधा मिली लेकिन वो भाईचारा, अपनापन और प्यार जो भारत में मिलता था, नहीं मिली।

मैं ने बैठकर बहुत सोचा कि जिस भारत को उसके हाल पर मैंने त्याग दिया था उस भारत की एक भागीदार मैं भी तो हूँ। गाँधी जी ने कहा था कि जो बदलाव आप देखना चाहते हैं वह आप खुद बनो, तो फिर अगर मैं अपने देश मे बदलाव चाहती हूँ तो उसे करना भी तो मेरी अपनी जिम्मेदारी हैं, इसलिए भारत वापस आ गई।

मैंने तबसे अपने स्तर पर अनुशासन, सत्य, सभ्यता के डगर पर चलना शुरू किया है। मैं अपने बच्चों के लिए भी एक झरोखा बनती हूँ जिसमें देखकर वह भी सही राह पर चले। अगर हर माँ अपने दूध के साथ इस भव्य भारती की सभ्यता, सत्य, अहिंसा, प्यार की परम्परा अपने बच्चों को घोंटकर पिलाए तो आगामी भारत के भविष्य की नींव ठोस और सही बन सकती है। इस नींव पर निर्माण शुरू होगी, उस सोने की चिड़िया, मेरे स्वर्णिम भारत की छवि जो, संसार की सभी देशों की नेता बनेगी। जहाँ महात्मा गांधी ने जैसे कहा था, ''रात के बारह बजे एक महिला अकेले चल पाएगी'' नाकि सौ लोगों और प्रेस के मौजूदगी में बेइज्जत की जाएगी। हाँ, मुझे उस छवि की आशा है, आएगी वह भारत, मेरे बच्चों के लिए नव निर्माणित होकर।

& t; fgUn

[1] oKkfud (कृषि संरचना एवं पर्यावरण प्रबंधन), गोवा के लिए भा.कृ.अनु.प. का अनुसंधान परिसर, एला, ओल्ड गोवा

# मेरे मन में भारत की छवि

Jhefr liuk xk;rkM[1]

''भारत माता की जय'' ये नारा कानों में जब गूँजता है तो बहुत संतोष प्राप्त होता है। लेकिन क्या हम ''भारत माता'' इस शब्द का आदर करते हैं यह बहुत बड़ा प्रश्न है। आजादी के 65 साल बाद भी भारत देश उन्नति तो कर रहा है लेकिन अंदर ही अंदर खोखला होता जा रहा है। इसके बहुत से कारण है जिससे हम सब परे हैं।

एक भारतीय होने के नाते यह हमारा फर्ज है कि हम हमारे देश को पूजें, आदर करें, हर एक भारतीय का सम्मान करें, एक दूसरे की मदद करें, भलाई करें। लेकिन यह सब हमारे देश में नहीं हो रहा हैं। बल्कि हम भारतीय एक दूसरे के खून के प्यासे हुए हैं, नुकसान करते हैं बुराई करते हैं।

हमारा देश भ्रष्टाचार के दलदल में डूब चुका है। यह एक ऐसा रोग है जिसका कोई इलाज नहीं। लालच और क्रोध इंसान के सबसे बड़े दुश्मन हैं। इन चीजों से हम दूसरे का ही नहीं खुद का भी बहुत नुकसान करते हैं। भारत में आज अच्छी पढ़ाई होती है, बच्चों को आधुनिक बातों की शिक्षा दी जाती है। अच्छी फसल उगने के कारण हमारे देश से दूसरे देशों को अनाज निर्यात किया है। बाहर के विद्यार्थी भारत में शिक्षा के लिए आते हैं। भारत में विभिन्न भाषाओं का प्रयोग करते है जिसकी वहज से हमारा देश दूसरे देशों से अलग माना जाता है। विभिन्न जाति के लोग, तरह तरह का खाना पीना, हमारे भारत देश को विशेष बनाता है। और सबसे हटके बनाता है। अगर हम भ्रष्टाचार का माध्यम छोड़े और एक दूसरे के प्रति प्यार से व्यवहार करें तो भारत देश सबसे अलग और प्यारा माना जायेगा।

भारत बहुत ही गुणी और सुंदर देश है। विदेशी ताकतें हम लोगों को अलग करने के लिए प्रयास करती है। हमें एक जुट रहना है और सबको हराना है, तभी एक हो पाएँगे। मेरे देश में अच्छाईयाँ बहुत है, बुराई बाहर की हैं जो भारत में जबरदस्ती से घुस रही है। हमें सब को इससे लड़ना है और भारत को बचाना है। यही हमारे भारत की शान होगी।

''जय भारत माता की''

जय हिंद!!

[1] io ofj"B, अनुसंधान फेलो, गोवा के लिए भा.कृ.अनु.प. का अनुसंधान परिसर, एला, ओल्ड गोवा

fgUnh fucU/k & r`rh; LFkku

# कृषि : देश की उन्नति या किसान का अभिशाप

Jhefr iue vjfoUn ckndj[1]

## ejs n'k dh èkjrh lksuk mxys] mxys ghjs&eksrh] ejs n'k dh èkjrh------

इन पंक्तियों से पता चलता है कि इस भारत देश में कृषि को और किसानों को कितना महत्वपूर्ण स्थान है। हमारी भारतीय संस्कृति कृषि प्रधान संस्कृति है। इस संस्कृति में धरती को माँ का दर्जा दिया गया हैं, इस धरती माँ की कोख से जो धान उगता है उससे सारा संसार तृष्ट हो जाता है।

इसी कृषि की वहज से आज हम सारे देश की धान की माँग पूरी कर सके हैं। इसके लिए नए नए तंत्रज्ञान, विज्ञान, फसलों की अधिकतम उत्पन्न देने वाली जातियाँ एवं किसानों के लिए सभी तरह की जानकारी देने के लिए विविध माध्यमों का निर्माण किया गया है। इससे हमारे कृषिबल अधिक धान उगा सकते है और अपनी उन्नति कर सकते हैं। और जब इस देश का किसान उन्नत होगा तभी तो हमारा देश उन्नत हो सकता हैं। क्योंकि और किसी भी क्षेत्र में चाहे आप कितनी भी सफलता या उन्नति करो, लेकिन जब अपने पेट की बारी आती है तो सभी को अन्न धान्य या खाने की चीज का ही सोचना पड़ता है।

आज देश ने हर क्षेत्र में प्रगति की है, वैसे ही कृषि में, दूध के उत्पन्न में, पशुधन में, वैसे ही उनके विदेश व्यापार में भी देश आगे बढ़ रहा है। और इसके लिए हमारी सरकार और सभी संस्थान किसानों के लिए मदद का हाथ बढ़ा रहे हैं। सभी तरह से किसानों के लिए आर्थिक मदद कहीं धान का बीज देना, खाद देना, सभी तरह की विशेष अनुदानें प्रदान करना, इतना ही नहीं, तो किसानों में एक तरह जो जोश भरने के लिए विविध पारितोषिक, उनका सम्मान, जैसे कई तकनीकियों का आयोजन किया जाता हैं। लेकिन यह सब तब ही किसान कर सकता है जब सारी सुविधाएं जैसे बारिश, तापमान आदि उचित हो अगर इसमें से कोई भी एक घटक ज्यादा या कम मिला तो उसका असर सीधे उसके धान पर पड़ता है। और जो भी सभी कष्ट उसने उठाये होते है उस पर पानी फिर जाता है। इसकी वजह से पिछले कई सालों में महाराष्ट्र के कई इलाकों में बारिश न होने के कारण किसानों का बहुत नुकसान हुआ है। और उसका परिमाण यह हुआ है कि किसानों ने आत्महत्या जैसे पर्याय को अपना लिया। यह बहुत ही दुख देने वाली बात हैं कि आज हम सभी कहते हैं कि आज हमारा देश हर क्षेत्र में आगे बढ़ रहा है। लेकिन ये भी तो एक सच है कि आज भी देश में ऐसे किसान हैं जिनको खेत में धान न आने की वजह से अपने कर्जो के वजह से आत्म्हत्या करनी पड़ती है।

जब इस तरह की नैसर्गिंक आपत्तियाँ आती है तो ऐसा ही लगता है कि कृषि किसान का अभिशाप है। क्योंकि इन सब नैसर्गिंक आपत्तियों पर हम काबू नहीं पा सकते हैं और इसी वजह से आज का किसान कितना भी उच्च तंत्रज्ञान का प्रयोग करता हो लेकिन वो इन आपत्तियों के आगे हतप्रभ है।

परन्तु इन सब के बाद भी हमारा किसान फिर से खड़ा होकर अगले साल अच्छी फसल उगाने के लिए तैयार होता हैं, इसलिए तो कहा गया था –

''जय जवान, जय किसान''

---

[1] iol ofj"B vuqlèkku Qsyk, गोवा के लिए भा.कृ.अनु.प. का अनुसंधान परिसर, एला, ओल्ड गोवा

# चित्रकला प्रतियोगिता

oxl % iFke ¼ikp o"kl rd½

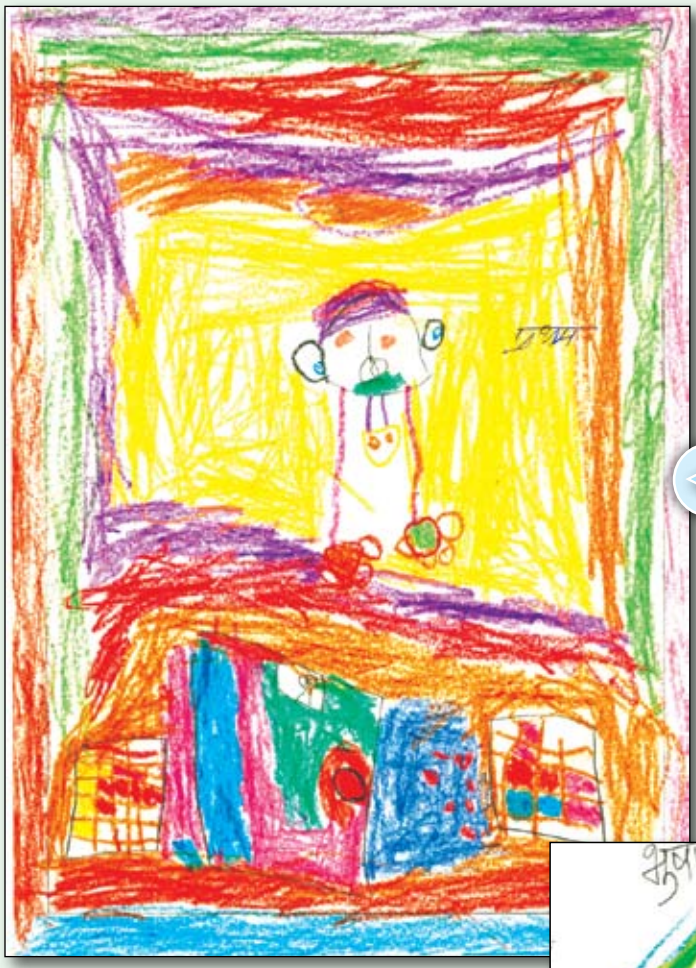



i'or lqtqlh ¼iFke iqjLdkj½

Hk"k.k lkor ¼f}rh; iqjLdkj½

# चित्रकला प्रतियोगिता

oxZ % iFke ¼ikp o"kZ rd½

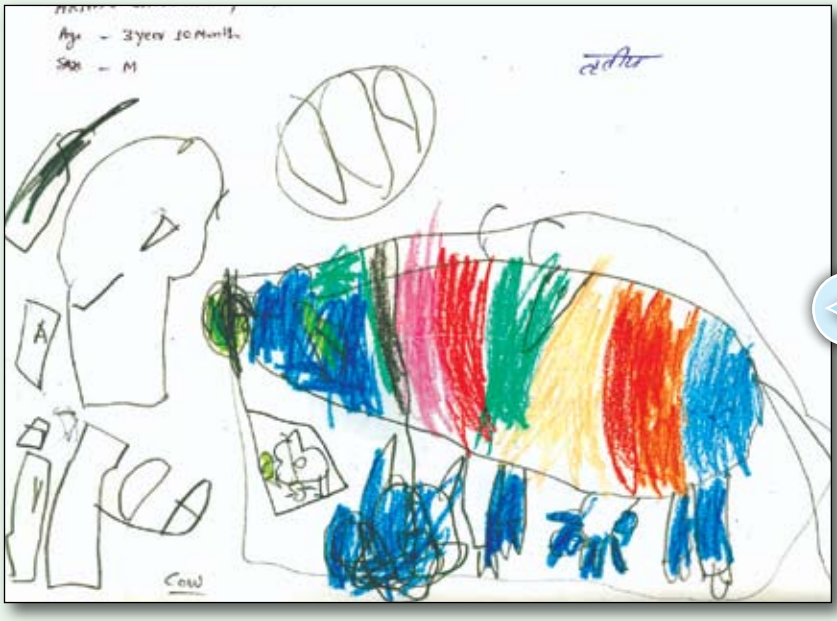




v.ko pk/kjh ¼r`rh; iqjLdkj½

lkjh'k dkyokydj ¼r`rh; iqjLdkj½

# चित्रकला प्रतियोगिता

oxZ % f}rh; ¼lkr o"kZ rd½

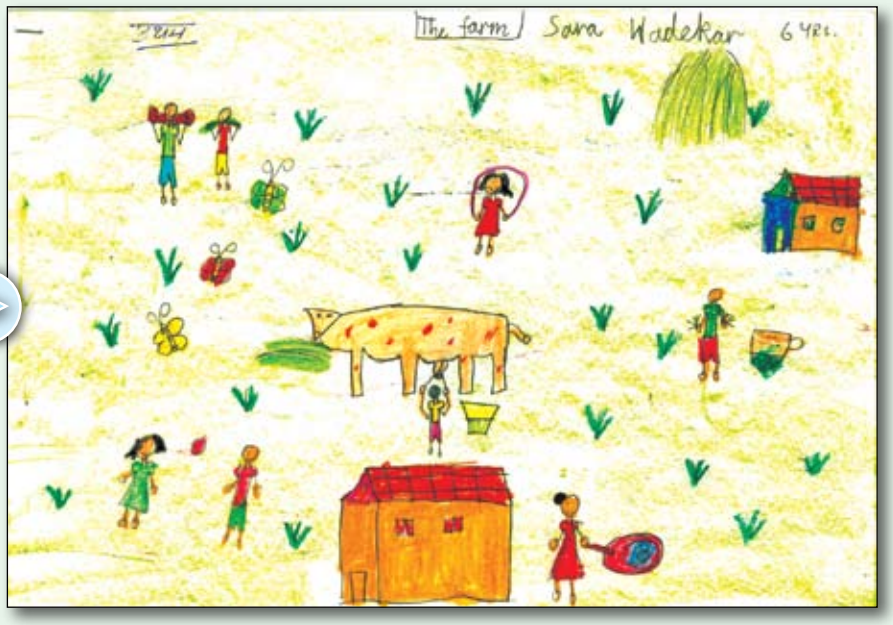


lkjk okMdj ¼iFke ijLdkj½

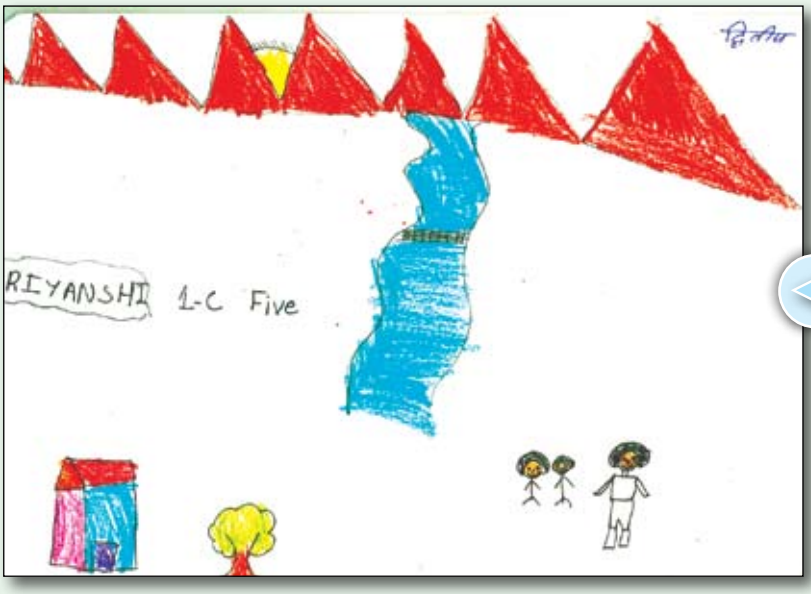


fi;k'kh jktukj;.k ¼f}rh; ijLdkj½

# चित्रकला प्रतियोगिता

oxZ % f}rh; ¼lkr o"kZ rd½

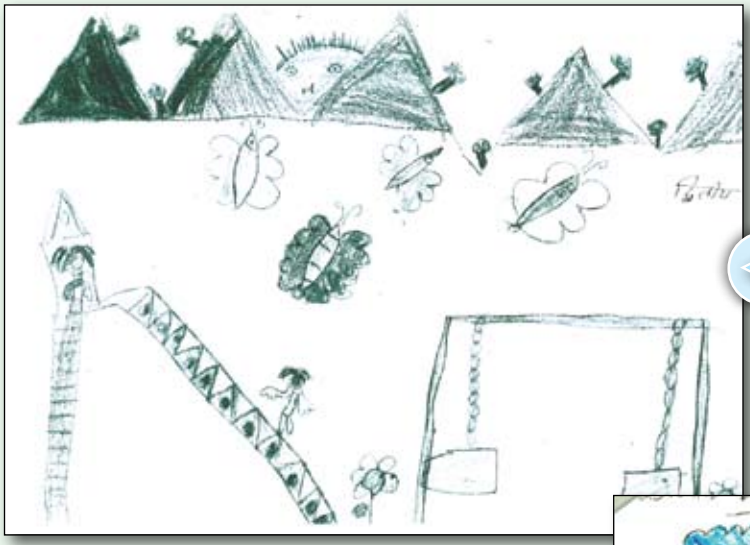



lkfe;k 'kkykiqj ¼f}rh; iqjLdkj½

vk;qu ncy ¼f}rh; iqjLdkj½

gjHk lkoar ¼r`rh; iqjLdkj½

# चित्रकला प्रतियोगिता

oxZ % r`rh; ¼ckjg o"kZ rd½

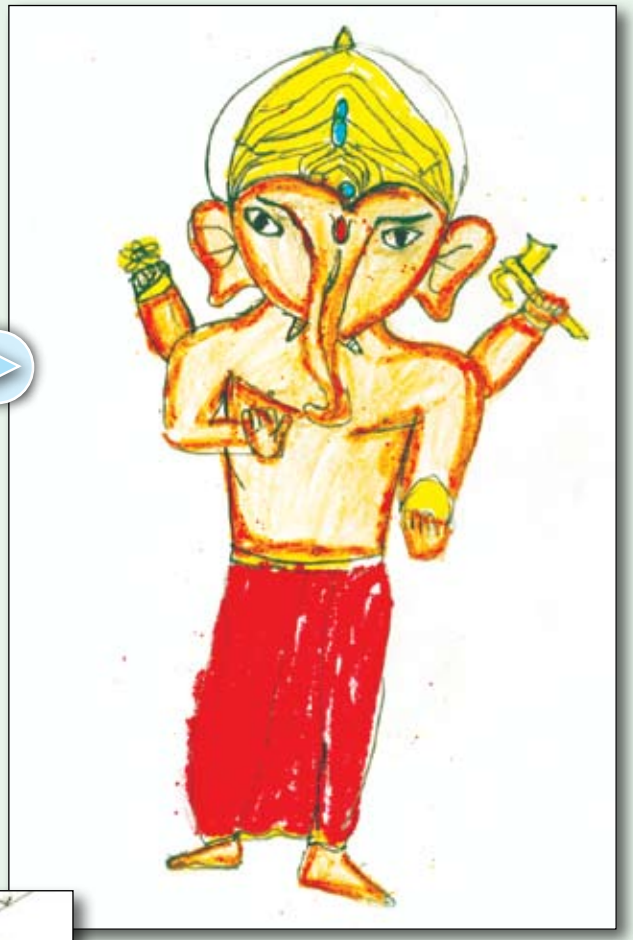



Hk"k.k Hkkedj ¼iFke iqjLdkj½

mRre lkor ¼f}rh; iqjLdkj½

# सामान्य साहित्य खण्ड...

# चन्द्रभूषण त्रिवेदी 'रमई काका'

Jh 'kf'k fo'odekj][1] Jh nhi dqekj][2] Jh lqthr dqekj flag[3] ,oa MkW- ujsUnz izrki flag[4]

## thou ifjp;

श्री चन्द्रभूषण त्रिवेदी को हिन्दी–संसार 'रमई काका' के नाम से अधिक जानता है। इनका जन्म उन्नाव जिले के रावतपुर नामक ग्राम में एक साधारण ब्राह्मण परिवार में हुआ। इनकी आरम्भिक शिक्षा अपने गांव में ही हुई। वहीं से मिडिल तथा बाद में हाईस्कूल की परीक्षा उत्तीर्ण की। इनका अधिकांश जीवन गांवों में ही बीता, जिससे इनके कोमल हृदय पर गांव के किसानों एवं गांव की समस्याओं का गहरा प्रभाव पड़ा। कुछ दिनों तक ग्राम सुधार के कार्यों की ट्रेनिंग लेकर यह प्रदेश की सरकारी नौकरी में रहे किन्तु बाद में इनकी प्रतिभा एवं लेखनी का चमत्कार जब हिन्दी जगत में फैला तो आकाशवाणी के लखनऊ केन्द्र में पंचायत घर कार्यक्रम में सहायक नियुक्त हुए। इस कार्यक्रम में प्रतिदिन इनसे आकाशवाणी के माध्यम द्वारा असंख्य श्रोताओं का मनोरंजन होता है।

## Hkk"kk vkSj 'kSyh

त्रिवेदी जी की भाषा लोकभाषा अवधी है, जिस पर इनकी जन्म एवं कर्मभूमि, बैसवाड़ा का प्रत्यक्ष प्रभाव है। आज की लोकभाषा में इनकी मनोहर रचनाओं को देखकर यह मानना पड़ता है कि खड़ी बोली की अपेक्षा इन लोकभाषाओं में अधिक शक्ति और स्वाभविकता है। जो लोग यह मानते हैं कि कविता या साहित्य की भाषा लोकभाषा से उच्च स्तर की होनी चाहिए उनके लिए त्रिवेदी जी यह कथन अत्यन्त महत्वपूर्ण है– ''जब जनता के विचारों में कुछ परिवर्तन और क्रान्ति करने की आवश्यकता होती है तो लोकसभा का ही आश्रय लेना पड़ता है।'' त्रिवेदी अपने इस उद्देश्य में पूर्ण कृतकार्य है। अवधी क्षेत्र में ही नहीं, समूचे हिन्दी जगत में इनकी रचनाओं का समादर है।

### þge iSljeh gyèkj fdlkuß

बहँधर किसान हितकर किसान,
हम पैसरमी हलधर किसान।।

यू हरु है जहिकै बूते पर,
बलसाली भे हलकर भइय।

हरु वहै आय जेहिके बल पर
भुइतें उघरीं सीता मइया।

मिथि के राजा जनक राज,
जेहिका गहिकै सनमान किहिनि।

चलि–चलि कै जेहिकी लीकन पर,
जग के हित बड़पनु दान किहिनि।

ई हर देउता का चरन छुवत,
किनकी–किनकी है बलगराति।

हर के बल भुइँ उतराय चलति,
औ फूलन फूली ना समाति।

तेहि हरके हमहुँ पुजारी हन,
हमका पियार अउजार यहै।

ख्यातन माँ भूख पछारै का,
हमरे हाथन हथियार यहै।

ढ्यालन माँ सिरजित हैं परानु,
कसभर किसान गुनगर किसान।

बहँधर किसान हितकर किसान,
हम पैसरमी हलधर किसान।।

& HkMMjh

---

[1] dk;Øe lgk;d (प्रयोगशाला तकनीकी), कृषि विज्ञान केन्द्र, गोवा के लिए भा.कृ.अनु.प. का अनुसंधान परिसर, एला, ओल्ड गोवा

[2] i{k= içekd, कृषि विज्ञान केन्द्र, गोवा के लिए भा.कृ.अनु.प. का अनुसंधान परिसर, एला, ओल्ड गोवा

[3] rduhf'k;u, गोवा के लिए भा.कृ.अनु.प. का अनुसंधान परिसर, एला, ओल्ड गोवा

[4] funs'kd, गोवा के लिए भा.कृ.अनु.प. का अनुसंधान परिसर, एला, ओल्ड गोवा

## thou ifjp;

भड्डरी घाघ की भांति एक ग्रामीण ज्योतिषी थे, किन्तु किंवद के सिवा इनके सम्बन्ध में कोई लिखित साक्ष्य नहीं मिलता। कुछ लोग बिहार का तथा कुछ लोग राजस्थान का निवासी मानते है। उनके तथा माता–पिता के सम्बन्ध में भी बड़ा मतभेद है। ऐसा लगता है कि दोनो दो व्यक्ति थे। इधर बिहार और उत्तर प्रदेशादि में जिनकी कृति प्रचलित है वे भड्डरी बिहार के निवासी थे और पुरुष थे तथा अन्य भड्डरी राजस्थान की निवासिनों कोई स्त्री रही होगी।

## Hkk"kk vkSj 'kSyh

घाघ की भांति भड्डरी की कहावतों में भाषा भी जनभाषा उस पर उत्तर प्रदेश के पूर्वी आंचल, बिहार मध्य प्रदेश तथा राजस्थान की स्थानीय बोलियों का प्रभाव है। भड्डरी ने भी घाघ की भांति ही चौपाई अथवा अन्य द्विपद अथवा चतुष्पद छन्दों की रचनाएं की है।

### Ñ"kdksa ds fy,
### o"kkZ foKku

कार्तिक सुद एकादशी, बादल बिजुली होय।
तो असाढ़ में भड्डरी, बरखा चोखी हाये।। 1।।

कातिक मावस देखी जोसी, रवि सनि भोमवार जो होसी।
रचति नखत अरु आयुश जोगा, काल पड़े अरु नासें लोगा।। 2 ।।

कातिक सुद पूना दिवस, जो कृतिका रिख होइ।
तामें बादर बीजुरी, जो संजोग सो होइ।।
चार मास तो वर्षा होगी, भली भांति यों भाषैं जोसी।। 3।।

मार्ग महीना माहिं जो, जेष्ठा तपै न मूर।
तो इमि बोलै भड्डली, निपटै सातो तूर।। 4।।

होली झर को करो विचार, सुभ अरु असुभ कहा फल सार।
गुच्छिम वायु बहैं अति सुन्दर, समयो निपजै सजल बसुन्धर।
पूरब दिशि की बहै जो बाई, कछु भीजै कछु कोरो जाई।
दक्षिण बाय बहै बध नास, समया निपजै सनई घास।
उत्तर बाय बहै गड़बड़िया, पिरथी अचूक पानी पड़िया।
जो झकोरे चारो बाय, दुखया परधा जीव डराय।
और झलो आकाशै जाय, तो पृथ्वी संग्राम कराय।।5।।

असनी गलिया अन्त बिनासै, गली रेवती जल को नासै।
भरती नासै तृनौ सहूतो, कृतिका बरसै अन्त बहूतो।। 6।।

कृतिका तो कोरी गई, अद्रा मेंह न बूँद।
तौं यों जानो भड्डरी, काल मचावै दूँद।। 7।।

भाद्रा तौ बरसै नहीं, मृगसिर पौन न जोय।
तो जानौ ये भड्डरी, बरखा बूँद न होय।।
कलसे पानी गरम हैं, चिरियाँ न्हावै घूर।
अंडा लै चींटी चढ़ैं, तो बरशा भरपूर।।

& ?kk?k

## thou ifjp;

पण्डित रामनरेश त्रिपाठी के अनुसार घाघ मुगल सम्राट् अकबर (1542 से सन् 1605 ई) के समकालीन थे और कन्नौज (फर्रूखाबाद) के निवासी थे। उनके नाम में वहाँ आज भी एक मुहल्ला है, जिसे सरया घाघ के नाम से पुराने लोग जानते हैं। यह कन्नौज नगर एक मील दक्षिण की ओर है। घाघ जाति के ब्राह्मण थे। सम्राट् अकबर ने उन्हें चौधरी की उपाधि दी थी।

## Hkk"kk vkj 'kyh

घाघ की कहावतों की भाषा में अवधी, भोजपुरी तथा छत्तीसगढ़ी का विचित्र मेल है। तत्सम शब्द भी उसमें कहीं–कहीं पाए जाते हैं किन्तु ग्राम्य शब्दों की बहुलता है। कबीर, मीराबाई और विद्यापति के पदों की समान घाघ की कहावतों पर अनेक बोलियों का यह प्रभाव इसलिए पड़ा है कि इन बोलियों के विशाल प्रदेशों में उनकी कहावतों को अपूर्व लोकप्रियता प्राप्त हुई हैं। जो कहावतें जहाँ पायी जाती हैं वहाँ उस प्रदेश की बोली का प्रभाव स्पष्ट है। घाघ की कहावतें बहुधा दोहे और चौपाईयों की भांति छोटे–छोटे द्विपद अथवा चतुष्पद छन्दों में हैं, जिन्हें सुगमता से आवज्जीवन के लिए कण्ठस्थ किया जा सकता है। उनमें कहीं–कहीं अनुप्रास, यमक, दृष्टान्त, उपमा तथा रूपकों की छटा भी मिलती है किन्तु सादगी और सरलता उनकी प्रथम विशेषता हैं जिससे अपढ़ किसान भी तुरन्त अपना लेता है।

## [krh lEcU/kh ckr

उत्तम खेती जो हर गहा, मध्यम खेती जो संग रहा।
जो पूछेसि हरवाहा कहाँ, बीच डूबिगे तिनके तहाँ।।

## _r foKku

माघ का ऊखम जेठ के जाड़, पहिलै बरखा भरिगा ताल।
कहैं घाघ हम होव वियोगी, कुआं खोदि कै घोइहैं धोबी।।

## [krh dh lh gk\

खेती तो थोड़ी करै, मिहनत करे सिवाय।
राम चहै वही मनुष को, टोटा कभी न आय।।

बीघा बायर होय, बाँध जो होय बंधाये।
भरा भुसौला होय, बबुर जो होय बुवाये।

बढ़ई बसे समीप, बसूला बाढ़ घराये।
पुरखिन होय सुजान, बिया बोउनिहा बनाये।

बरद बगौधा होय, बरदिया चतुर सुहाये।
बेटवा होय सपूत, कहे बिन करे कराये।

थोड़ा जोतै बहुत हेंगावै, ऊँच न बाँधे आड़।
ऊँचे पर खेती करै, पैदा होवै भाड़।।
जेतना गहिरा जोतै खेत, बीज परे उतनै फल देत।।

## dlh cokbZ gk\

हरिन फलांगन काकरी, पैगे पैग कपास।
अस करि बोउ सनैया सँचरै नाहिं बतास।

मक्का जोन्हरी औ बजरी, इनको बोवे बिड़री।
कदम कदम पर बाजरा, मेढ़क कुदौनी ज्वार।

ऐसे बोवै जो कोई, घर घर भरै कोठार।
छीछी भली जौ चना, छीछी भली कपास।

जिनकी छीछी ऊखड़ी छोड़ो आस।
सना घना बन बेगरा, मेढ़क फन्दे ज्वार।

पैर पैर पर बाजरा, करै दरिद्रै पार।
बाड़ी में बाड़ी करै, करै ईख में ईख।

वे घर योंही जायँगे, सुनै पराई सीख।
बोओ गेहूँ काट कपास, होवे न ढेला मिले ने घास।

## cht dk ifjek.k

जो गेहूँ बोवै पाँच पसेर, मटर के बीघा तीसै सेर।
बोवै चना पसेर तीन, तिन सेर बीघा जोन्हरी कीन।।

दो सेर मोथी अरहर मास, डेढ़ सेर बिगहा बीज कपास।
पाँच पसेरी बिगहा घान, तीन पसेरी जड़हन मान।।

सवा सेर बीघा साँवा मान, तिल्ली सरसों अँजुरी जान।
बर्रे कोदो सेर बोआओ, डेढ़ सेर बीघा तीसी नाओ।

यहि विधि से जब बोवै किसान, दूने लाभ की खेती जान।।

## HkMMjh lgk;d lkexh

जोसी– ज्योतिषी। रिख– नक्षत्र। मूर–मूल नक्षत्र। तूर–अन्न। झर को करो विचार– वायु का विचार करो। कोरो– सूखा। असनी गलिया– अश्विनी नक्षत्र बरस जाने पर। अन्त बहूतो– अन्त में अच्छी वृष्टि होगी। दँद– द्वन्द्व, संघर्श। पुनगौना– पूर्ण मासी। धुजा बांधि के– झण्डी गाड़कर। तीरथकोने– दक्षिण पश्चिम के कोने। बायब– वायव्य कोण। कलसे– घड़े में। गाजैं– गरजेंगे, प्रसन्नता प्रकट करेंगे। डँगरवा– पशु। बाउभिरंगी– वायविडंग, एक औषधि। लोमा– लोमड़ी।

## ?kk?k lgk;d lkexh

बाध– जिससे खाट बुनी जाती है। बेकहल– पलाश की जड़, जिसे बरसात के दिनों में खोदकर रस्सी बनाते हैं। धना– धनिया। नीमन– विश्वास योग्य। धिया– पुत्री। सतवार– चरित्रवती। नियरा– समीप में। दुहुट– दुष्ट। नित्तै– प्रतिदिन। खुनुस– लड़ाई–झगड़ा। बराहे– सूखती हुई। भकुवा– निर्बुद्धि, मूर्ख। बायर– घिरा हुआ, एक चक में। भुसौला– भूसा रखने का स्थान या कमरा। पुरखिन– घर की मालकिन। बोउनिहा– बोने योग्य। बगौधा– उत्तम नस्ल का पानीदार। बरदिया– हलवाहा। भाड़–

भड़भड़ा, ग्रीष्म ऋतु का एक कँटीला पौधा। सना– सुतली। बेगरा– कपास। बाड़ी'– कपास के खेत में। लौ– कटाई। मास– उड़द। आदर– आर्द्रा नक्षत्र तथा स्वागत सत्कार। हस्त– हथिया नक्षत्र तथा प्रेम से हाथ मिलना।

## pUnHk"k.k f=onh ^jeb dkdk* lgk;d lkexh

हलधर भइया– भगवान श्रीकृष्ण के बड़े भाई बलराम, जो सदैव हल को धारण किये रहते थे। इसी से उनका नाम हलधर पड़ गया था।

सीता मइया– माता जानकी। सीता की उत्पत्ति हल के फाल की नोक से उधड़ने वाले एक कलष से हुई थी ऐसी प्रसिद्धि है। बताते हैं, एक बार मिथिला में अनेक वर्षव्यायी अनावृष्टि के कारण जब भीषण अकाल पड़ा था तो राजा जनक ने स्वयं हल जोता था। उसी अवसर पर सीता जी पृथ्वी के गर्भ से निकली थी।

दधीचि– एक ऋषि, जिनकी हड्डी से बने वर्ज्रास्त्र के द्वारा देवताओं ने असुरो का विनाश किया था।

# माँ

Jhefr ifrHkk m- lkor[1]

मेरी ख्वाहिश है कि मैं फिर से फरिश्ता हो जाऊँ,
माँ से इस तरह लिपटूँ कि बच्चा हो जाऊँ...।।

लबो पर उसके कभी बद्दुआ नहीं होती,
बस एक माँ है जो कभी खफा नहीं होती...।।

इस तरह मेरे गुनाओं को वो धो देती है,
माँ बहुत गुस्से में होती तो रो देती है...।।

मैंने रोते हुए पोंछे थे किसी दिन आंसू,
मुद्दतों माँ ने नहीं धोया दुपट्टा अपना...।।

अभी जिंदा हैं माँ मेरी मुझे कुछ भी नहीं होगा,
मैं अब घर से निकलती हूँ दुआ भी साथ चलती हैं...।।

जब भी कश्ती मेरी सैलाब में आ जाती हैं,
माँ दुआ करती हुई सैलाब में आ जाती है...।।

मेरी माँ मेरी माँ सबसे प्यारी मेरी माँ
सबसे अनमोल मेरी माँ

[1] lgk;d, वित्त एवं लेखा अनुभाग, गोवा के लिए भा.कृ.अनु.प. का अनुसंधान परिसर, एला, ओल्ड गोवा

# दुर्दशा देश में हिन्दी की : प्रासंगिकता हिन्दी-दिवस की

Jh foØkUr xIrk[1]

जिस हिन्दी से हमारा रिश्ता माँ बेटे का होना चाहिए, वह यूँ तो भारत के संविधान में राज–भाषा के रूप में गौरवान्वित है। परन्तु 61 वर्ष बीत जाने पर भी यथार्थ प्रचलन में अंग्रेजी ही राज–भाषा बनी हुई है। विडम्बना है कि इस देश में वोट माँगने की भाषा तो हिन्दी रहती है पर सत्तासीन होकर शासन चलाने की भाषा अंग्रेजी ही राज–भाषा बनी हुई है। यहाँ तक की राष्ट्रीयता का डिमडिमनाद करने वाली राजनीतिक पार्टी भारतीय जनता पार्टी ने भी अपने 6 वर्ष के शासनकाल में हिन्दी के लिए कोई ठोस काम नहीं उठाए। हाँ, बस एक काम हुआ कि अटल जी ने संयुक्त राष्ट्र संघ में भाषण कई बार हिन्दी में दिए। इसके सिवाय कुछ नहीं। हाँ हिन्दी की थोड़ी बहुत सेवा की है तो हिन्दी फिल्मों ने, हिन्दी गानों ने और हिन्दी समाचार टीवी चैनलों ने।

सर्वविदित है कि राष्ट्रीयता के प्रमुख सूत्र के रूप में राष्ट्रभाषा का प्रथम स्थान है। परन्तु दुर्भाग्य है कि आज के कम्प्यूटर इंटरनेट के यांत्रिकी दौर में अंग्रेजी का चलन बढ़ने के साथ–साथ अंग्रेजियत भी बढ़ती जा रही है। भाषा के साथ–साथ अंग्रेजियत ने भी हमारी अपनी संस्कृति को विलुप्त कर दिया है। दक्षिण के अन्य प्रान्तों के लोग ऐसा करें, तो कुछ हद तक सहा जा सकता है। परन्तु असहन पीड़ा तब होती है जब हिन्दी प्रान्तों में हिन्दी भाषी लोगों के मन में भी हिन्दी के प्रति उपेक्षा उदासीनता व अन्यमनस्कता का भाव दीखता है। मातृ–भाषा की ऐसी उपेक्षा कोई अन्य भाषा–भाषी नहीं कर रहा। क्या मराठी, क्या बंगला, क्या कन्नड़, क्या तमिल या तेलगू सभी अपनी भाषा में ही बात करने में गर्व का अनुभव करते हैं। मगर, हम हिन्दी–भाषी प्रदेशवासियों का आलम यह है और सोच भी कि अंग्रेजी में वाक्‌युद्ध किए बिना, बौद्धिकता की धाक् नहीं जगती। यहाँ की विचारधारा है कि अंग्रेजी बोलना बड़ा आदमी होना है। वह रौब और रुतबे की भाषा है, और अंग्रेजी बोलना बड़ा आदमी होना है। हिन्दी तो छुट–भाईयों की बोली है। सौ फीसदी हिन्दी भाषी राज्यों में उत्तर प्रदेश, हरियाणा, उत्तरांचल, दिल्ली, बिहार, मध्य प्रदेश, राजस्थान आदि पहली कक्षा से अंग्रेजी पढ़ाने–पढ़ने की आँधी चल रही है। यह मानसिकता उच्चवर्गीय या मध्यवर्गीय परिवारों की ही नहीं, निम्नवर्गीय गरीब मजदूर चपरासी आदि की भी है।

यह तो निर्विवाद है कि राष्ट्रभाषा के माध्यम से ही देश को एक सूत्र में बांधा जा सकता है। सर्वविदित है कि सभी हिन्दी भाषी नेता गांधी, सुभाष, पटेल, राजगोपालाचारी, अम्बेडकर, राजेन्द्र प्रसाद आदि स्वतंत्रता के पूर्व आजादी के सूत्र रूप में हिन्दी के प्रबल पक्षधर थे। संविधान निर्माण के समय हिन्दी को प्रतिष्ठित करने हेतु भी संकल्पबद्ध थे। यहाँ तक कि पं. जवाहर लाल नेहरू ने भी 6 नवम्बर, 1948 को स्पष्ट घोषणा की थी कि आजाद भारत का सब काम हिन्दी में हो.....। परंतु दुर्भाग्य कि आजादी के बाद नेहरू जी का रूप लचीला हो गया। यद्यपि भाषण वह हिन्दी में ही देते थे। किन्तु मानसिक रूप से समझौतावादी हो गये। तब से बेचारी हिन्दी वनवासी जीवन व्यतीत करने को अभिशप्त हो गयी। कैसी विडम्बना है कि विश्व में सर्वाधिक बोली जाने वाली भाषाओं में हिन्दी का प्रमुख स्थान है लेकिन देश की चहारदीवारी के भीतर वह बन्दी जीवन व्यतीत करने को अभिशप्त है।

आज भी सचिवालय में कारोबार अंग्रेजी में ही होता है। अंग्रेजी आज हमारे देश में सर्वोच्च स्थान ग्रहण कर चुकी है। संसद में भी विधेयक हिन्दी में नहीं पेश होते। सर्वोच्च न्यायालय में भी न्याय हिन्दी में नहीं मांगा जा सकता। संघ लोक सेवा आयोग की परीक्षा तथा साक्षात्कार में अंग्रेजी का ही वर्चस्व है। आई.ए.एस. की परीक्षा तथा साक्षात्कार में अंग्रेजी का पर्चा आज भी अनिवार्य है। नौकरशाह, बड़े–बड़े व्यवसायी, बुद्धिजीवी, सैन्य अफसर, बैंक कर्मी, न्यायपालिका के लोग सभी अंग्रेजी की प्रभुता के लिए उत्तरदायी हैं। अन्तर्राष्ट्रीयता के अन्धानुकरण में बेचारी हिन्दी की सचमुच दुर्दशा हो रही है। कवि आहत है यह देख देखकर–

[1] voj J.kh fyfid, गोवा के लिए भा.कृ.अनु.प. का अनुसंधान परिसर, एला, ओल्ड गोवा

## fgUnh ns'k oklh ge] dksu ;gk¡ fgUnh ugha\
## fQj Hkh fgUnh&fojks/k] ;gh [kyrk gSA

अतः गहराई से देखा जाये तो हम हिन्दी भाषी लोग हिन्दी के नाम पर घड़ियाली आँसू बहाते हुए भी प्रत्यक्ष और प्रच्छन्न दोनों रूपों से हिन्दी के विरोधी है। हम अपने आभिजात्य की रक्षा अंग्रेजी के कवच में करना चाहते हैं परन्तु टेक्नोलॉजी के इन भाषाई संक्रमण काल में हिन्दी भाषा से संत धर्मार्थ हमें गम्भीरता से सोचना होगा। भाषा को जनोपयोग बनाने हेतु आग्रह को त्यागना होगा, दुरूहता और दुर्बोधता के मकड़जाल से भाषा को निकालना होगा। अंग्रेजी भाषियों में ऐसा कोई दुराग्रह कभी नहीं रहा। इस भाषा में ग्रीक, लैटिन, फ्रेन्च, जर्मन, स्पेनिश आदि सभी भाषाओं के सामान्य जीवन में प्रयुक्त होने वाले शब्दों, मुहावरों और वाक्यांशों को अंग्रेजी भाषियों ने ज्यो का त्यों अपना लिया। Ad, hoc, de facto, ipso, status que, e.g. (Example Gratia), Post Mortem, Amor Vincit Omnia आदि–आदि शब्दों को अपनी अभिव्यक्ति शैली में यथावत पचा लिया, और उनका धड़ल्ले से प्रयोग जारी है। अतः हमें भी चाहिए कि जो शब्द हमारी रोजमर्रा की जिन्दगी में रच–बस गए है उनका निः संकोच प्रयोग करने से गुरेज या परहेज न करें। चाहे वह अंग्रेजी शब्द हो या फिर उर्दू के। जैसे टिकट, रेल, बस, कार, साइकिल, मोटर साइकिल, स्कूटर, स्कूटी, कमीज, पायजामा, ब्लेड बिस्कुट आदि। उदार हृदय से सर्वग्राही बनकर अपनी भाषा को सब प्रकार से ऋद्ध–समृद्ध करें। अपनी सोच का आयाम विकसित करें। बहुत पहले कवि ने आशागर्भित विश्वास व्यक्त किया था। काश! वह मूर्तरूप धारण कर ले, तो अहोधन्य! अहोभाग्य!

# बरखा की बहार

Mk jkd;'k 'kEkk[1]

वर्षा रानी वर्षा रानी झूम झमू कर आई।
सूखी तपती धरती तुमको देख देख हरशाई।

ताल–तलैया पोखर नदिया उमड़ उमड़ सब चलते।
नभ पर छाए नीरद देखो घुमड़ घुमड़ रब करते।।

दादुर टर्र टर्र स्वर में गाते, झिंगुर शोर मचाता।
ऋतु सावन का गहन निशा में नव स्वर का मंच सजाता।।

झर–झर निर्झर से बादर ज्यों स्वर मल्हार सुनाते।
तृप्त हुआ धरती का कण–कण, प्राणी मौज मनाते।।

गरम दुपहरी गरमी की अब हो गई बात पुरानी।
मनसून की झड़ी लगी है, दिन रात बरसता पानी।।

बिछा गलीचा हरियाली का धरती मन मुस्काई।
बरखा तुने आकार अपने संग है खुशियां लाई।।

[1] fgUnh vfèkdkjh, राष्ट्रीय समुद्र ज्ञान संस्थान, दोना पावला, गोवा

# पूँछ पर बैठा भाग्य

vKkr

एक दिन एक बूढ़ी बिल्ली रात का खाना खोजते हुए दूसरे मोहल्ले में पहुँच गयी। वहाँ उसे एक खूबसूरत युवा बिल्ली नजर आई जो अपनी पूँछ को पकड़ने के लिए गोल–गोल चक्कर काट रही थी। चक्कर लगाते हुए वह अपनी पूँछ को पकड़ने का भरसक प्रयास कर रही थी। बूढ़ी बिल्ली उसके पास पहुँची और उसे रोकते हुए पूछी,"यह क्या कर रही हो?" युवा बिल्ली धीमी हुई और बोली कि उसे किसी ने बताया है कि सफलता, भाग्य और खुशी सब उसकी पूँछ के सबसे ऊपरी छोर पर बैठे हैं। "बस मुझे इतना करना है कि अपनी पूँछ का आखिरी छोर छूना है और मुझे खुशहाल जिंदगी मिल जाएगी", उसने कहा।

बूढ़ी बिल्ली बोली, "मैं उम्र में तुमसे बहुत बड़ी हूँ और यह भी जानती हूँ कि सफलता, भाग्य और खुशी मेरी पूँछ के सबसे ऊपर छोर पर हैं। लेकिन मैं इन्हें पकड़ने की कोशिश नहीं करती।" "क्यों, क्या तुम सफल और भाग्यशाली होने के साथ खुश जीवन नहीं चाहती", युवा बिल्ली ने आश्चर्य के साथ पूछा। बूढ़ी बिल्ली बोली, "निश्चित तौर पर मुझे यह सब चाहिए, लेकिन अगर इन्हें हासिल करने की परवाह न करते हुए मैं इन्हें पकड़ने की कोशिश करना छोड़ दूँ और अपने स्तर पर कठिन परिश्रम करती रहूँ, तो जहाँ जाऊँगी खुशहाल जिन्दगी मेरे पीछे चली आएगी।"

"वह कैसे?" युवा बिल्ली ने उत्साह से पूछा? "मेरी पूँछ हर जगह मेरे साथ रहेगी, इसलिए मुझे उसे पकड़ने की जरूरत ही नहीं है," यह बात कहते हुए बूढ़ी बिल्ली आगे बढ़ गयी।

# काश से असीम आकाश

Mk- eryk tfy;V xIrk[1]

काश – काश करते ही बीते थे, मेरे कई कल
घुट – घुटकर मरती थी मैं हर दिन पल – पल
बेबसी और पछताप का बोझ मन में ढ़ो – ढ़ोकर
बिता दिया था मैने कई साल खा–खाकर ठोकर ।

सोचा था..... कि हो गया सब खत्म
न था आस, जिन्दगी तो जैसे हो गया था थम
पीछे देख–देखकर लेती थी अफसोस की सांस
घुल रहा था..... मेरा कल बिना कोई आस।

लेकिन ईश्वर की शब्द रूपी रोशनी से उजागर
बह गया..... एक ही पल में सब गम
उजियाली की किरण फूटी और हुआ पथ सुगम
छलांग मारी आगे....., छोड़ पीछे खाई अगम।

उड़ान भरते पहुँची मैं... 'काश से असीम आकाश'
न कोई बोझ, न कोई चिन्ता, न दर्द की गुंजाइश
न गुज़रे कल का, न आने वाले कल का अंदेशा
है साथ मुक्ति का शिरस्त्राण और परमेश्वर के सत्य का संदेशा ।

है साथ डगर पे, मेरे हमराही मेरे ईश्वर के चुनिंदा
कीर्ति और आराधना लबों पर, नहीं किसी की निन्दा
जिन्दगी की योद्धा तनकर भर रही हूँ आगे कदम
लक्ष्य का निर्णय सौंप दिया 'उसको' मैंने हरदम।

[1] oKkfud (कृषि संरचना एवं पर्यावरण प्रबंधन), गोवा के लिए भा.कृ.अनु.प. का अनुसंधान परिसर, एला, ओल्ड गोवा

# अति भौतिकवाद, हमारा पर्यावरण और वैश्विक उष्णता

Mk- jkds'k 'kek[1]

पर्यावरण को अंग्रेजी भाषा में इनवायरमेंट *(Environment)* कहा गया है जो फ्रांसीसी शब्द *"Environment"* शब्द से उत्पन्न हुआ है। जिसका पर्याय घेरना *(To Surround)* होता है। अंग्रेजी भाषा में पर्यावरण के लिए एक शब्द *Habitare* का भी प्रयोग किया जाता है जो लैटिन के शब्द से बना है, जिसकी व्याख्या यह है कि एक सुनिश्चत स्थान जिसमें जीव उस स्थान की भौतिक एवं जैविक दशाओं में समयोजना स्थापित करते रहते हैं। पारिभाषिक तौर पर देखें तो एक विशेष वातावरण जिसमें एक विशेष जीव वर्ग या समूह निवास करता है पर्यावरण कहलाता है, पर्यावरण की परिभाषा भारतीय एवं पाश्चात्य पर्यावरणविदों की दृष्टि से देखें तो इसका अर्थ स्पष्ट नजर आयेगा– भूगोल परिभाषा कोश के अनुसार– चारो ओर उन बाहरी दशाओं का योग, जिसके अन्दर एक जीव अथवा समुदाय रहता है या कोई वस्तु रहती है। पृथ्वी पर संतुलित जीवन के लिए वायु, भूमि, जल, वनस्पति, पेड़–पौधे, मानव सब मिलकर पर्यावरण बनाते हैं। पृथ्वी पर जबसे मनुष्य, पशु–पक्षी और जीव तथा जीवाणु उपभोक्ता के रूप में प्रकट हुए तब से लेकर आज तक यह चक्र निरन्तर अवधि या गति से चला आ रहा है।

परन्तु अब हमारा यही पर्यावरण अति विलास और भोगवाद के चलते क्षरित होने लगा है। आज हमारे पर्यावरण को जो क्षति हो रही है उसके मूलभूत कारण कमोवेश हम सभी जानते हैं। आज मानव जाति भौतिक विकास की नई ऊँचाइयों को छू रही है। परन्तु प्रकृति हमेशा संतुलन करती चलती है और हम मानव केवल लेने और कुछ ना देने की प्रवृत्ति के चलते प्रकृति के पारिस्थतिक संतुलन को नष्ट करने में लगे हैं। इस सुन्दर वसुधा पर जिन्हें जितनी आवश्यकता होती है वह उन्हें प्राप्त हो जाता है और शेष जो बचा रहता है वह प्रकृति आगे लिए अपने पास संरक्षित कर लेती है। अथर्ववेद के पृथ्वी सूक्त में लिखा है– ^^g ekjrh ek] tk dN e r|>l yxk] og mruk gh gkxk] ftl ru iu% ink dj ldA rj eeLFky ij ;k rjh thou “kfDr ij dHkh vk?kkr ugh d :xkA** यही नहीं ऋग्वेद की रचनाओं में भी पर्यावरण के तत्वों– पृथ्वी, जल, आकाश, वायु के प्रति सभी ऋषि नत्मस्तक होकर प्रणाम करते हैं अर्थात् भारत में नदियों को माँ तुल्य स्थान एवं सम्मान दिया गया है। भूमण्डलीयकरण एवं बाजारीकरण के इस भौतिक युग में मानव ने प्रकृति पर विजय प्राप्त करने के लिए अनेक सुख सुविधाएं एवं वैज्ञानिक उपलब्धियां अर्जित की, साथ ही बढ़ती आबादी की आवश्यकताओं की पूर्ति हेतु औद्योगिक क्रान्ति का सहारा लिया। यह वह निर्णायक समय था जब हमारी प्रकृति का सामान्य सा रूप विखण्डित होने लगा। आधुनिक विलासिता और भोगवाद के चलते हमने अपने पर्यावरण और धरती का भरपूर दोहन किया परन्तु जहाँ पर्यावरण और प्रकृति के संरक्षण के लिए कुछ करने की बात आई तो ये हमें अपने विकास और आधुनिकता जितना महत्वपूर्ण कभी नहीं लगा। अब जब पानी सिर से गुजरने लगा तो सभी राष्ट्रो के नीति–निर्माताओं और पर्यावरणविदों की नींद हराम हो गयी है। पर्यावरण हितैशी जीव–जन्तुओं की बहुत सी प्रजातियाँ विलुप्त होती गयी और जो शेष बची है वे विलुप्त होने के कागार पर खड़ी है। सफाईकर्मी गिद्ध विलुप्त होते जा रहे हैं। समुद्र, नदी, तालाब, जंगल और घास के मैदान का परितंत्र विनाश की ओर अग्रसर है यही नहीं वैश्विक स्तर पर प्राकृतिक असंतुलन के स्पष्ट नज़ारे दिखने लगे हैं क्योंकि वैश्विक उष्णता से ऋतु चक्रों के संतुलित परिचालन में व्यवधान उत्पन्न होने लगा है। हिमखण्ड पिघलने लगे हैं। समुद्र अपनी वर्जनाएं तोड़ रहा है और उसका जल स्तर उछाल मार कर संकट की ओर सीधा संवाद कर रहा है। अर्थात जल प्रलय का आमंत्रण–पत्र तैयार हो गया है और आकाश में ओजोन परत अपना धैर्य खो रही है। साथ ही अन्य प्राकृतिक आपदाएं (सुनामी) कहर ढाहने लगी हैं। पर्यावरण के इस प्रदूषण ने हमारे जनमानस के ऊपर अनेक असाध्य रोगों का आक्रमण शुरू किया है। युद्ध की रणभेरी बज चुकी है। यदि इन परिस्थितियों से मनुष्य प्रकृति के प्रति सचेत और सावधान नहीं हुआ तो भयंकर से भयंकर परिणाम उसके दहलीज पर दस्तक देते नजर आयेंगे।

वैश्विक उष्णता भी पर्यावरण प्रदूषण और अनियंत्रित विकास की अंधी दौड़ का घातक परिणाम है। ग्रीनहाउस गैसों के अत्यधिक उत्सर्जन और दिनो दिन कम होते जंगल के कारण भी हमारी पृथ्वी दिनोदिन गर्म होती जा रही है। ऋतु चक्र की

[1] fgUnh vfèkdkjh, राष्ट्रीय समुद्र विज्ञान संस्थान, दोनो पावला, गोवा

अनियमितता आगे आने वाले खतरे की घंटी है। समस्या क्या है यह सभी को पता है और इसके लिए क्या सर्वोत्तम समाधान हो सकते हैं वो भी जान लिए गए हैं। पर यहाँ प्रश्न यही उठता है कि इस संसार के राष्ट्र इस समस्या को कितनी गंभीरता से लेते हैं और जबानी जमाख़र्च और दोगली कागज़ी नीतियों को त्याग कर जमीनी स्तर पर क्या ठोस कदम उठाते हैं। उदाहरण के तौर पर हम सभी को पता है कि जंगल और बाघ एक दूसरे के परिपूरक है। इन दोनो का अस्तित्व एक दूसरे के लिए आवश्यक है। परन्तु पिछले कुछ सालों से भारत के प्रसिद्ध कान्हा और सरिस्का जैसे बाघ अभयारण्यों में सक्रिय अवैध शिकारी माफियाओं के चलते इन बाघों के अस्तित्व पर ही संकट आ गया है पर यह मुद्दा मीडिया में छाये रहने के बाद भी न तो राज्य और न, ही भारत सरकार इस दिशा में कुछ ठोस कदम ले पाई है। इस प्रकार हम देखते हैं कि पर्यावरण का नाश और वैश्विक उष्णता मनुष्य की आने वाली पीढ़ी के लिए गंभीर चुनौती होते हुए भी इस दिशा में अभी तक कोई सार्थक या ठोस प्रयास नहीं किया जा रहा है।

# शहीद–ए–जंग 'आजादी की आजादी' की

Mk Ekryk TkfYk;V xIrk[1]

एक सवाल करूँगी! आप सोचिए और मुझे जवाब दीजिए। 1947 में हमे जो आज़ादी मिली थी, हम में से कितने हैं, जो उसे महसूस करते हैं?

दिल को टटोलकर सच बोलिए! क्या आप को आज़ादी है? सच बोलने का? सचमुच....?

क्या तरक्की की इस सघन दौड़ में हमारी आजादी शहीद नहीं हुई है? कितने हैं जो चाहकर भी, अपनी दिल की आवाज सुनकर अमल नहीं कर पाते हैं!

मुझे तो कई बार लोगों से बोलने का मन करता है कि मेरे चरित्र को मेरे पहनावे से नापा मत कीजिए, लेकिन अधिकतर समय मुँह बंद रखती हूँ।

आजादियों को मैंने अपने बच्चों की रोज़ी रोटी कमाने की जंग में शहीद किया है। मैंने एक मूक दर्शक बनकर अपने स्वाभिमान को शहीद कर दिया है। सार्वजनिक जगहों में अपने और मुझ जैसे कई लोगों का अपमान होते हुए मैं देखती हूँ लेकिन कुछ नहीं बोलती क्योंकि भला मेरा स्वाभिमान कहाँ है? वह तो बहुत दिनों पहले शहीद हो चुका है।

आखिर क्यों मेरी भावनाओं को शहीद करना पड़ा मुझे..... सोचिए .....??

लेकिन क्या आप अपने बच्चों को भी हमारे जैसा बनाना चाहते हैं? तो कृपया सिखाएं उन्हें कि असली सफलता अपने मन का सुनकर खुशी से करने में है। मत शामिल कीजिए उन्हें इस दुनिया की सघन दौड़ में। उन्हें तो लेने तो मजा इस 'आजादी की आजादी' का।

जय हिन्द!!

[1] oKkfud (कृषि संरचना एवं पर्यावरण प्रबंधन), गोवा के लिए भा.कृ.अनु.प. का अनुसंधान परिसर, एला, ओल्ड गोवा

हर कदम, हर डगर
किसानों का हमसफर
भारतीय कृषि अनुसंधान परिषद

Agrisearch with a human touch